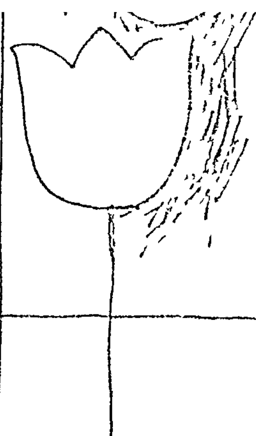
आदर्श साहित्य संघ प्रकाशन



विज्ञान के सन्दर्भ में जैन धर्म

मुनि सुखलाल

मागीलाल वसंतकुमार, २५, ओल्ड सट्टा
गली, जवेरी बाजार, बम्बई-४००००२
के आर्थिक सहयोग से प्रकाशित

मूल्य : बारह रुपये / द्वितीय संस्करण, १९८५ / प्रकाशक : कमलेश चतुर्वेदी, प्रबंधक, आदर्श साहित्य संघ, चूरू (राजस्थान) / मुद्रक : कोणार्क प्रिंटर्स द्वारा सविता प्रिंटर्स, दिल्ली-११००३२

VIGYAN KE SANDARBH MEN JAIN DHARM : Rs. 12.00

मंगल-भावन

सत्य शाश्वत और अशाश्वत का योग है। शाश्वत परोक्ष है। अशाश्वत प्रत्यक्ष है। सत्य शाश्वत ही नही है, इसलिए हम परिवर्तन की प्रक्रिया द्वारा उसे जानते है। इसलिए सत्य की अभिव्यक्ति का माध्यम बदलता है, भाषा बदलती है, उसके अर्थ भी बदलते है।

धर्म एक महान् सत्य है, किन्तु उसे यदि दो-तीन हजार वर्ष पुरानी भाषा और परिभाषा मे प्रस्तुत किया जाये तो वह समझ से परे और दुर्बोध हो जाता है। इस वैज्ञानिक युग मे सास लेने वाला प्रवुद्ध आदमी विज्ञान की शब्दावली से परिचित है। यदि उसी शब्दावली मे धर्म का प्रस्तुतीकरण हो तो वह सुबोध हो सकता है। आचार्यश्री तुलसी के नेतृत्व मे प्रतिपादन की वह प्रक्रिया दो दशको से चल रही है। उससे धर्म और विज्ञान की दूरी कम हुई है। वैज्ञानिक दृष्टि वाले लोगो को भी धर्म की गहराई मे जाने का अवसर मिला है।

मुनि सुखलालजी ने प्रस्तुत पुस्तक मे धर्म को वैज्ञानिक सन्दर्भ मे प्रस्तुत किया है। अहिंसा को पर्यावरण-विज्ञान के परिप्रेक्ष्य मे जितना समझा जा सकता है, उतना केवल प्राचीन व्याख्या के सन्दर्भ मे नही समझा जा सकता। इसी प्रकार अन्य अध्यायो मे भी धर्म को वैज्ञानिक समझ के साथ प्रस्तुत किया गया है।

प्रस्तुत पुस्तक के प्रत्येक अध्याय मे आधुनिक और प्राचीन—दोनो दृष्टियो का योग है, तुलनात्मक अध्ययन उपलब्ध है। इसलिए यह वर्तमान युग के लिए पठनीय और मननीय है। मैं चाहता हू कि इस दृष्टि का और अधिक विकास हो और धर्म या अध्यात्म को विज्ञान की उस प्रतिमा मे प्रतिष्ठित किया जा सके जो आज भी प्राण-प्रतिष्ठा से सम्पन्न है।

—युवाचार्य महाप्रज्ञ

अणुव्रत-भवन
नयी दिल्ली
११ नवम्बर, १९८१

पृष्ठभूमि

आचार्यश्री तुलसी के सामने कहे कामरेड यशपाल के वे शब्द अब भी मेरे कानो मे गूज रहे है—'जैन धर्म एक परम वैज्ञानिक धर्म है।' एक अजैन और वह भी एक कम्युनिस्ट व्यक्ति के मुह से निकले ये शब्द उस समय भी मुझे बहुत अर्थपूर्ण लगे थे, पर जब मैंने विज्ञान के साथ जैन धर्म का अध्ययन शुरू किया तो उनकी सार्थकता से मैं और भी अधिक चकित हुआ। यद्यपि पदार्थ विज्ञान की दृष्टि से भी जैन धर्म का अपना मूल्य है। अणु से लेकर लोक-अलोक तक की विविधमुखी चर्चा वहा की गई है। इस दृष्टि से अनेक पुस्तके भी प्रकाश मे आयी है। पर जीवन-विज्ञान की दृष्टि से भी वहा इतना तलस्पर्शी विवेचन हुआ है जो विज्ञान के लिए भी विमर्श का विषय है।

शस्त्र-सज्जा के इस युग मे आज समूची मानवजाति बल्कि प्राणधारी के जीवन को खतरा पैदा हो गया है। ऐसी स्थिति मे जैन धर्म का अहिंसा विचार बहुत ही महत्त्वपूर्ण बन गया है। प्रदूषण के सन्दर्भ मे पाच स्थावर जीवो की अहिंसा ने आज एक नया अर्थ ग्रहण कर लिया है। पृथ्वी, पानी, अग्नि, हवा तथा वनस्पति की हिंसा की बात जैन धर्म की अपनी विशिष्ट धारणा है। पहले जैन शास्त्रो की यह सूक्ष्मता बहुत दुरूह लगती थी। पर आज जिस तरह से प्रदूषण का खतरा सारी दुनिया पर लहरा रहा है, उससे अहिंसा के विचार को नया आधार प्राप्त हुआ है। जैन साधना पद्धति को भी पहले अव्यवहार्य तथा कठिन समझा जाता था, पर आज के परिप्रेक्ष्य मे निर्जरा-दर्शन स्वास्थ्य के लिए भी एक व्यवहार्य विषय बनता जा रहा है। आधुनिक समाज-व्यवस्था तथा विचार-समन्वय की दृष्टि से जैन चिन्तन ने अपने महत्त्वपूर्ण मूल्य-मान स्थापित कर लिये है। इन सब विषयो को लेकर मुझे जैसा अनुभव हुआ उसी पर से मैंने इस पुस्तक का प्रणयन किया है। इसीलिए इसका नाम भी 'विज्ञान के सन्दर्भ मे जैन धर्म' रखा गया है।

एक जमाना था जब सत्य को तर्क-सिद्ध होना आवश्यक था। आज के युग मे

विज्ञान के सन्दर्भ में जैन धर्म

अनुक्रम

शस्त्र-सज्जा और अहिंसा

अहिंसा जैन धर्म का एक मुख्य विचार है। कुछ लोग इसे केवल एक सैद्धान्तिक दृष्टि से देखते है, पर वास्तव मे अहिंसा एक समूचा जीवन-दर्शन है। इसमे कोई शक नही कि महावीर ने जीवन के सर्वोच्च मूल्यो की चर्चा की है। इसीलिए अहिंसा का विचार बहुत सूक्ष्म और कभी-कभी तो समाज के लिए अव्यवहार्य-सा भी प्रतीत होने लगता है। पर भूमिकाओ की सापेक्षता से विचार करने पर यह बिलकुल स्पष्ट हो जाता है कि अहिंसा जीवन-व्यवहार के लिए भी कितनी अनिवार्य है। कुछ लोगो ने अहिंसा को कायरता का प्रतीक कहकर शक्ति-पूजा के लिए हथियारो का नैवेद्य तैयार करने मे कोई कमी नही रखी है। पर शस्त्र-सज्जा आज जिस कगार पर पहुच गयी है उससे भगवान् महावीर की यह बात कि, 'अत्थि सत्थ परेण पर नत्थि असत्थ परेण पर,' शस्त्र मे प्रतिस्पर्धा है, अशस्त्र मे कोई प्रतिस्पर्धा नही हे, बहुत मूल्यवान बन गयी है। एक जमाना था जब आदमी के पास हथियार के नाम पर नाखून ही थे, पर वे नाखून भावात्मक रूप से बढते-बढ़ते आज परमाणु और उद्जन बम का आकार ग्रहण कर चुके हैं।

परमाणु बम

जब से परमाणु से ऊर्जा प्रस्फुटित हुई है, यह विवाद का विषय रही है। आरम्भ मे कहा गया था कि इस ऊर्जा से आदमी की सभी समस्याएं हल हो जायेगी। यह आदमी के लिए वरदान सिद्ध होगी। इससे जो अमित ऊर्जा प्राप्त होगी वह हानिरहित होगी। पर आज उन सारी आशाओ पर पानी फिर गया है। परमाणु ऊर्जा से बिजली प्राप्त करने के लिए संसार मे अनेक सयत्र सस्थापित किये गये है, पर उनसे हमेशा एक खतरा भी बना हुआ है। यदि कभी कोई विस्फोट हो जाये तो भयंकर विकिरण फैलने की सम्भावना है। ऐसी अनेक दुर्घटनाए अनेक स्थानो पर हुई भी है। इसी से अनेक जगह परमाणु रिएक्टर स्थापित करने के विरुद्ध जन-आन्दोलन सगठित हुए हैं।

परमाणु तथा उद्जन वमो के प्रयोग के विरुद्ध आन्दोलन तो वहुत पहले ही शुरू हो गये थे, पर उनका विकास वन्द होना तो दरकिनार रहा अपितु दिनोदिन वढ़ता जा रहा है। आज विश्व की स्थिति इतनी नाजुक हो गयी है कि तीसरे महायुद्ध के रूप मे महाविनाश केवल पाच मिनट की दूरी पर खडा है। केवल एक सिरफिरे लडाईखोर आदमी की आवश्यकता है कि सारा ससार काल के गाल मे समा सकता है। अणुयुद्ध-निरोध-हेतु वाशिंगटन मे आयोजित 'इण्टरनेशनल कान्फ्रेंस ऑफ फिजिशियन्स' की प्रथम सभा मे अमेरिका, रूस, जापान, ब्रिटेन, फ्रास व अनेक देशो के सौ से अधिक ख्यातिप्राप्त डॉक्टरो ने भाग लिया था। उसमें मेसी विश्वविद्यालय के फिजीशियन डॉ० रावर्ट लिफ्टन ने घोषणा करते हुए कहा था कि हम सभी डॉक्टर राजनैतिक नेताओ को स्पष्ट वताना चाहते है कि आणविक युद्ध होने की दशा में हमारे द्वारा उनके शारीरिक या मानसिक घावो की मरहमपट्टी की आशा न की जाए।

कुछ सैनिक व सार्वजनिक नेताओ तथा वैज्ञानिको द्वारा भी आणविक शस्त्रो के सग्रह के खतरे को साधारण वताने का प्रयास किया जा रहा है। कुछ तो यह भी कहते पाये जाते है कि आणविक युद्ध को सीमित ढंग से संचालित किया व जीता जा सकता है तथा विश्वव्यापी अणुयुद्ध होने पर भी मानवजाति व वातावरण को सजीव रखा जा सकना है। पर यह एक भ्रम है जिसमे वे स्वय भी विश्वास नही रखते।

सोवियत कार्डियोलोजिकल सेटर के जनरल डायरेक्टर श्री पी० चाजोव द्वारा अकाट्य अनुसन्धान आकडे प्रस्तुत किये गए है, जो वताते है कि एक मेगाटन की शक्ति वाला आणविक विस्फोट दस लाख जनसख्या वाले शहर में तीन लाख व्यक्तियो की तत्काल मृत्यु तथा तीन लाख व्यक्तियो के जलने व घायल होने का पैगाम होगा। विस्फोट मे लगभग ८० प्रतिशत डॉक्टर समाप्त हो जायेंगे तथा अधिकतम अस्पताल भी ध्वस्त हो जायेगे। औषधि व रक्त की आपूर्ति पूर्ण अस्त-व्यस्त हो जायेगी।

अमेरिकी प्रतिनिधिमडल के नेता हार्वर्ड विश्वविद्यालय के कार्डियोलोजिस्ट डॉ० वर्नार्ड लाउन द्वारा नियंत्रित आणविक युद्ध की सम्भावना के सिद्धान्त को भ्रमपूर्ण वताया गया है। डॉक्टरो के अनुसार सम्मेलन का उद्देश्य विश्व लोकमत को केवल अणुयुद्ध के चिकित्सा सम्वन्धी परिणामो से अवगत कराना ही नही वल्कि अणुविस्फोट की सम्भावनाओ की रोकथाम की पहली आवश्यकता से अवगत कराना भी है। मेडिकल साइंस की सोवियत एकादमी के सदस्य श्री निकोलाई ट्रेपेजिनकोव ने कहा—भिन्न-भिन्न राजनैतिक मतो के वावजूद सभा मे सम्मिलित समस्त सदस्य सर्वश सहमत हैं कि आणविक युद्ध के विस्फोट के वाद न तो मानवजाति के जीवन की ही कामना की जा सकती है और न ही

सभ्यता की रक्षा की।'

आज से ३६ वर्ष पूर्व ६ अगस्त को ८-१५ वजे हिरोशिमा मे अमेरिका ने पहला अणुवम का विस्फोट किया था। उस समय ७८१५० आदमी तो उसी क्षण मारे गये थे तथा ३७४५२ आदमी उस विकिरण से जलकर सदा के लिए अपग वन गये थे। जो १०९००० वचे थे उन पर रेडियोधर्मिता के प्रकार और तादाद का जो असर अव तक वताया गया है वह नये प्रमाणो के आधार पर गलत सावित हो रहा है। पिछले कुछ महीनो मे सान फ्रासिस्को के निकट स्थित लावरेस लिवरमोर नेशनल लेवोरेटरी ने जो प्रकाशन किया है, उससे यह मालूम पडता है कि अव तक के परमाणु वम की रेडियोधर्मिता के मान्य अनुमान काफी त्रुटिपूर्ण है। विलियम ई० लोवे ने अपने सहयोगी एडगर मेडलसोन के साथ अध्ययन करके वताया है कि रेडियोधर्मिता के प्राणिज प्रभावो के मान्य आधारभूत तथ्यो को यह एक गहरी चुनौती है।

वास्तव मे विनाश इतना ही नही है। परमाणु और उद्जन वम विरोधी विश्व काग्रेस के अधिवेशन मे यह रहस्योद्घाटन किया गया है कि २४ वर्ष पूर्व अमेरिका के नेवादा रेगिस्तान मे परमाणु-विस्फोट मे आग देने वाले सैनिक अधिकारियो के खून मे अव भी भारी मात्रा मे श्वेत कणो की कमी पायी गयी है। अमेरिका के महामारी नियत्रण केन्द्र के डॉ० काडवेल तथा वैज्ञानिको ने एक रिपोर्ट पेश की है जिसमे वताया गया है कि उक्त वैज्ञानिको ने अगस्त, १९५१ के परमाणु-परीक्षण मे भाग लेने वाले ३३२४ सैनिको पर जाच के दौरान उक्त तथ्य का पता लगाया था।

वैज्ञानिको ने पता लगाया है कि रेडियो-विकिरण से प्रभावित व्यक्तियो की भावी पीढी पर भी उसका असर होने वाला है। वर्षो तक वहा जमीन मे रेडियो-विकिरणो का प्रभाव रहेगा। वहा पैदा होने वाले वच्चे जन्म से ही विकलाग होगे।

सच तो यह है कि विकिरण का प्रभाव इतना गहरा है कि दूर-दूर तक के लोग उससे प्रभावित होगे। परमाणु भट्ठियो एव परमाणु वमो के विखडन आदि से उत्पन्न ऊर्जा ऊष्मा, प्रकाश, गामा किरणे एव विभिन्न प्रकार के कणो के रूप मे वाहर निकलती है। परमाणु वम के विस्फोट से रेडियो-सक्रिय कणो का विशाल वादल वायुमंडल में उठता है। ये कण वायु के साथ दूर-दूर तक फैल जाते है और फिर धीरे-धीरे पृथ्वी की सतह पर लौटते है। भोजन, वायु एवं जल मे मिश्रित होकर ये कण मनुष्य के शरीर मे चले जाते हैं। इन कणो मे मुख्यतः स्ट्रोशियम ९० होता है जो कैल्शियम के गुणो जैसा होता है, जिससे अस्थि-कैंसर जैसी वीमारिया पैदा हो सकती है।

हालाकि परमाणु वम की विनाशलीला भी कम नहीं है। पर आज तो न्यूट्रॉन वम की चर्चाए भी गूजने लगी हे। न्यूट्रॉन वम लघु आकार का एक परमाणु सयत्र है जिससे किसी प्रकार का विस्फोट होने अथवा ऊष्मा होने के वजाय वडी सख्या मे न्यूट्रॉन निकलते है। इससे इमारतो आदि पदार्थो को तो कोई नुकसान नही पहुचता है पर जीवित सेल नष्ट हो जाते है। मनुष्य, पशु आदि प्राणी इसके तत्काल शिकार वन जाते है।

एक न्यूट्रॉन सयत्र से प्रति वर्ग सेंटीमीटर क्षेत्र से प्रति सेकड कई हजार अरब न्यूट्रॉन निकलते है जबकि न्यूट्रॉन वम से चन्द सेकेडो मे कई अरब न्यूट्रॉन निकलते है।

ये न्यूट्रॉन अत्यन्त प्रभावशाली होते है और सयत्र से निकलने वाले न्यूट्रॉनो की तुलना मे अधिक घातक होते है। न्यूट्रॉन विद्युत आवेशहीन कण होते है, जिन्हे अन्य विकिरणो जैसे अल्फा अथवा वीटा किरणो की भाति आसानी से रोका नही जा सकता। न्यूट्रॉन वम से भारी मात्रा मे गामा किरणे भी निकलती है जो विना क्षीण हुए लम्वी दूरी तक पहुच सकती है। विशेषज्ञो का कहना है कि न्यूट्रॉन वास्तव मे विखडनमुक्त हाइड्रोजन वम होता है जिससे बिना कोई विस्फोट हुए तेजी से न्यूट्रॉन विकिरण होता है और सभी जीवित सेल नष्ट हो जाते है।

इसके विस्फोट से निर्धारित स्थल पर ५ मिनट के अन्दर सभी मानव अशक्त हो जायेगे और ४ से ६ दिनो मे मर जायेगे। खुले मे वम से प्रभावित ५० प्रतिशत लोग कई दिनो या सप्ताहो के भीतर काफी कष्ट भुगतने के वाद मर जायेगे। ४६० हेक्टेयर क्षेत्र मे विस्फोट-विन्दु के चारो ओर ५० प्रतिशत स्थल की वायु मानव के लिए घातक सिद्ध होगी। ३५० हेक्टेयर क्षेत्र के अन्दर-अन्दर विभिन्न वृक्षो और ऊचे पौधो के लिए, ३३० हेक्टेयर क्षेत्र मे उभयचरो और सरीसृपो के लिए, १०० हेक्टेयर क्षेत्र मे विभिन्न कीट-पतगो के लिए, ४० हेक्टेयर क्षेत्र मे विभिन्न सूक्ष्म जीवधारियो जैसे फगाई आदि के लिए घातक सिद्ध होगी। द्वितीय विश्वयुद्ध की आग मे ५ करोड से अधिक लोग स्वाहा हुए। २ करोड ७० लाख तो युद्ध के मैदान मे ही काम आये, वाकी वमवारी और यातना-शिविरो मे। इसमे ६१ देशो को भाग लेना पडा। द्वितीय विश्वयुद्ध के वाद भी तीसरी दुनिया के देशो मे हुए युद्धो मे ढाई करोड से अधिक व्यक्ति मारे जा चुके है।

परमाणु शस्त्रो के साथ-साथ जीवाणु शस्त्रो के प्राणघाती आविष्कार भी कम नही हुए है।

१६४८ मे यूनाइटेड नेशन्स के कमीशन ने सामूहिक विध्वस के हथियारो की परिभाषा करते हुए कहा था—परमाणु अस्त्र, रेडियो-विकिरण अस्त्र तथा

जीवाणु अस्त्र सामूहिक विध्वस के हथियार होगे ।

१९१४ के युद्ध के बाद विध्वसक गैस को भी एक साधारण हथियार माना जाने लगा है। सयुक्त राज्य अमेरिका के फौजी जनरल श्री फ्रे ने कहा है—'आधा टन का लेविसाइट गैस का बम न्यूयार्क के दस जिलो को पूर्ण निर्जन बना सकता है।'

वैज्ञानिको ने यह भी कहा है कि गैस बम के आक्रमण से मानवता का बचना असभव है। डॉ० रोजबर्ग ने रोग-जीवाणुओ के ४० प्रकारो का वर्णन किया है। उनमे से अनेक हवा से, अनेक पानी से, अनेक भोजन से तथा अनेक कीटाणुओ से फैलते है।

बोटुलिज्म नाम का एक ऐसा खतरनाक जहर है जिसकी एक ग्राम मात्रा ७० लाख व्यक्तियो को मार देती है। अशुद्ध सीटाकोसिस का एक चौथाई ग्राम ७ अरब आदमियो का सहार कर सकता है। मेजर ब्रोक चिसोम ने कहा है—'एक छोटा-सा देश बहुत शीघ्रता से जीवाणु-शस्त्रों से पूरे महाद्वीप का विनाश कर सकता है। इससे करोडो-करोडो आदमी कुछ ही घटो मे समाप्त किये जा सकते है।' अमेरिकी वैज्ञानिको ने कहा है कि सीटाकोसिस का एक क्वार्ट इतने सूक्ष्म जीवाणु पैदा कर सकता है जिससे सारी दुनिया दो बार नष्ट हो जाये। यह एक अप्रतिकार्य हथियार है।

१९८० का विश्व सैनिक बजट चालीस अरब रुपयो का था। इस शतक की नवी शताब्दी मे यह खर्च पचास खरब हो जाने की सभावना है। आज विश्व मे पचास हजार अणु-शस्त्रो का भडार है। ऐसे-ऐसे बम बन गये है जो हिरोशिमा मे गिराये गए अणुबम से दस लाख गुणा अधिक सहारक है। फिर भी उनमे निरतर वृद्धि हो रही है। हर रोज अस्सी करोड रुपये केवल इसीलिए खर्च किए जा रहे है।

सम्प्रति विश्व का सैनिक बजट सम्पूर्ण विश्व के उत्पादन का छह प्रतिशत है। प्रथम विश्वयुद्ध के पहले तथा प्रथम और दूसरे विश्वयुद्ध के अन्तराल मे यह केवल तीन प्रतिशत से अधिक नहीं था। इस शस्त्र-सज्जा के कारण आज दुनिया मे भयकर तनाव अनुभव किया जा रहा है।

रूस और अमेरिका ने नवी शताब्दी के आठवे दशक मे सैनिक तैयारी मे जो व्यय किया है उससे दुनिया के दूसरे देशो मे एक दहशत-सी पैदा हो गयी है। यद्यपि रूस का सैनिक व्यय विश्वस्त रूप से तो नही मिल पाता पर नाटो-प्रदत्त सूचना के अनुसार उसमे तीन प्रतिशत की वृद्धि अवश्य हो रही है। अमेरिका १९८०-८५ मे अपने सैनिक खर्च मे चार प्रतिशत की वृद्धि कर रहा है। इस हिसाब से पाच वर्षो मे अमेरिका का अतिरिक्त सैनिक खर्च छह खरब रुपये हो

जाएगा।

रूस और अमेरिका तो शस्त्र-सज्जा मे प्रतिस्पर्धी है ही, पर आज तो भयानक शस्त्रो के सग्रह की होड़ लग गयी है। तेल-निर्यातक देशो के सगठन 'ओपेक' के सदस्य राष्ट्र तेल की कीमतो मे वेशुमार वृद्धि कर उसकी आय से तेजी मे शस्त्र-सग्रह मे लगे हुए है। गरीबी की औसत रेखा से भी नीचे तीसरी दुनिया के देश भी हालाकि अपने नागरिको को दो जून भर पेट रोटी न खिला पाते, तन ढकने के लिए कपडा नही दे पाते, रहने के लिए मकान नही दे पाते, पर शस्त्रो पर भरपूर खर्च कर रहे है। उनके राष्ट्रीय उत्पादन मे कुल तिगुनी वृद्धि हुई है जवकि सैनिक खर्च मे साढे चार गुना वृद्धि हुई है।

स्टॉकहोम-स्थित अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति-शोध संस्थान के अनुसार १९७९ मे हुआ कुल हथियार निर्यात १९६९ की तुलना मे ५०० प्रतिशत तथा १९५९ की तुलना मे १२०० प्रतिशत अधिक था। औद्योगिक दृष्टि से विकसित राष्ट्रो ने दो-तिहाई शस्त्रास्त्र व्यापार तीसरी दुनिया के साथ किया है। अधिक उन्नत और खर्चीले हथियारो की माग मे लगातार वृद्धि हो रही है। इसीलिए उनका विश्व व्यापार द्रुतगति से वढ रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय शस्त्रास्त्र व्यापार ने दूसरे महायुद्ध के वाद तीसरी दुनिया मे हुई लडाइयो मे हथियारो की सप्लाई की, उनसे कम-से कम ढाई करोड इन्सान मारे जा चुके है। तिस पर भी यह धधा जोर-शोर से वढता जा रहा है।

अपने शस्त्र आप वनाने वाले देशो की सख्या मे भी अभूतपूर्व वृद्धि हुई है। अभी पचास देश महत्त्वपूर्ण हथियारो, जैसे—लडाकू एव वमवर्षक विमान, हथियारवाहक गाडिया, प्रक्षेपास्त्र और युद्धपोतो का स्वय निर्माण कर रहे है।

कुछ देश शस्त्रास्त्र व्यापार का प्रयोग राजनैतिक या आर्थिक वल वढाने के लिए करते है तो कुछ सैनिक अड्डो की सस्थापना के लिए। तीसरी दुनिया के देशो मे आज हथियारो की माग वहुत तीव्र है। निर्यातक देश अपने हथियारो का चमत्कारी विज्ञापनो, दावो और प्रभावो के जरिए ऐसा आकर्पण पैदा कर देते है कि गरीव विकासमान देश उस मायाजाल मे पडकर अपनी प्राकृतिक सम्पदा को कौडियो के मूल्य में वेचकर भी विकसित देशो की तिजोरिया भरते है। फिर अपने गरीव पडोसी देशो से लडते है, अपने तथा उनके जान तथा माल का नुकसान कर तवाह होते है।

भारत और पाकिस्तान के पारस्परिक सदेह के कारण एक ओर जहा पाकिस्तान को भयकर शस्त्र-भडारण करना पड रहा है, वहा भारत को भी वहुत-सा धन अपनी सुरक्षा दृष्टि से खर्च करना पड रहा है। इस सदर्भ मे 'इडिया टुडे' (१६ अगस्त, १९८१) मे प्रकाशित आकडो के अनुसार भारत को अपने

सुरक्षा वजट में ४२०० करोड रुपये की वृद्धि करनी पड़ रही है। उससे देश की कुल आवादी के १/५ भाग को रहने के लिए एक कमरे का पक्का मकान दिया जा सकता है। हिन्दुस्तान एरोनेटिक्स लिमिटेड को ६२२ करोड की जो उत्पादन हानि हो रही है उतनी राशि से २०० मेगावाट थर्मल पॉवर सयत्र दिल्ली को दिया जा सकता है। एक जगुआर की ८ करोड की कीमत के एवज मे ५ करोड स्कूली वच्चो को दो-दो कॉपिया वाटी जा सकती है। एक पनडुब्वी की कीमत से दो लाख गावो को पीने का पानी सप्लाई किया जा सकता है। पाच एम० वी० टी० टैको की २५ करोड की कीमत से १२५०० गावो मे प्राथमिक स्कूल खोले जा सकते है। दो आई० ए० एफ० हेलीकॉप्टर की २ करोड ४० लाख कीमत से १२००० स्कूली टीचरो का वार्षिक वेतन चुकाया जा सकता है। आठ सौ हवाई जहाजो पर वार्षिक खर्च होने वाले २०० करोड रुपयो के एवज मे १० लाख टन गेहू खरीदा जा सकता है जिससे १/५ भारतीय नागरिको को १० दिनो तक खाना खिलाया जा सकता है। एक हजार जीप और ट्रक की १०० करोड कीमत से १० हजार वसे पाच वडे शहरो मे परिवहन का कार्य कर सकती है। अधूरी योजनाओ को पूरा करने मे लगने वाले ३५ करोड रुपये से ३५ टेलीफोन एक्सचेज स्थापित हो सकते है। ४६ डिफेन्स लेवोरेटरीज की क्षतिपूर्ति मे लगने वाले १०० करोड रुपये से ५०० वेड के २० अस्पताल खोले जा सकते है। यह तो केवल भारत की वात है। इस प्रकार न जाने दुनिया के कितने देशो मे सामरिक तनाव से कितना वेशुमार खर्च वढ रहा होगा ?

परमाणु ऊर्जा के प्रसार के साथ-साथ वीस देशो मे अव तक कुल मिलाकर १२० रिएक्टर स्थापित कर लिये गये है। प्रति रिएक्टर से प्रतिवर्ष ५०० पौण्ड प्लूटोनियम प्राप्त होता है। जिस परमाणु वम ने नागासाकी का विध्वस किया था, उसमे सिर्फ १० पौण्ड प्लूटोनियम काम मे आया था। अव तक अमेरिका, सोवियत सघ, इग्लैड, फ्रास, चीन तथा भारत ने परमाणु परीक्षण किए है। आस्ट्रेलिया, कनाडा, इजरायल, जापान, पश्चिम जर्मनी, वेल्जियम, ताइवान, इटली और दक्षिण अफ्रीका परमाणु हथियार वनाने मे सक्षम है और अर्जेटीना, चिली, डेनमार्क, इजिप्ट, ईरान, नीदरलैडस्, नार्वे, पुर्तगाल, स्पेन, स्विट्जरलैड, युगोस्लाविया, ब्राजील, चेकोस्लोवाकिया, पूर्व जर्मनी, ग्रीस, मेक्सिको, न्युजीलैड पाकिस्तान, दक्षिण कोरिया, स्वीडन तथा तुर्की पाच वर्षो के अन्दर परमाणु वम वना सकते है।

परमाणु हथियारो के साथ ही उपग्रह टेक्नोलॉजी मे जिस तरह विकास हो रहा है वह भयंकर सिद्ध होगा, वल्कि वह परमाणु युद्ध को भी पारम्परिक युद्ध की श्रेणी मे ला देगा। इस दृष्टि से दो प्रकार के उपग्रह-मारक-यत्रो पर काम चल रहा है—धरती से उपग्रह को मार गिराने वाले तथा अतरिक्ष से अतरिक्ष मे

उपग्रह को मार गिराने वाले। अतरिक्ष से अतरिक्ष मे तैरते उपग्रहो को या तो प्रक्षेपास्त्रो या लेसर किरणो से मारकर खत्म किया जा सकेगा या लेसरयुक्त उपग्रहो के जरिये या चार्ज्ड पार्टिकल बीम हथियारोयुक्त उपग्रहो के जरिये खत्म किया जा सकेगा। वास्तव मे ही यदि अतरिक्ष युद्ध शुरू हो गया तो दुनिया को बचा पाना असभव ही होगा।

मोहन वशिष्ठ ने अपने एक निबन्ध मे लिखा है—'सयुक्त राष्ट्र की 'बाह्य अन्तरिक्ष के शातिपूर्ण उपयोग' सम्बन्धी समिति ने राय प्रकट की है कि अब अन्तरिक्ष का और सैन्यीकरण तथा बड़े देशो की घातक हथियारो की अंतरिक्ष मे दौड रोकने के लिए तुरन्त प्रभावी कदम जरूरी है।' समिति सन् १९८२ मे वियना मे होने वाले सयुक्त राष्ट्र के 'अन्तरिक्ष के शातिपूर्ण उपयोग' सम्मेलन की तैयारी मे जुटी है।

स्टॉकहोम के अन्तरिक्ष के शाति शोध सस्थान द्वारा हाल ही मे प्रकाशित प्रतिवेदन के अनुसार अन्तरिक्ष मे अब तक ११३०० उपग्रह छोडे जा चुके है। इनमे से ९८ प्रतिशत रूस और अमेरिका के है। सन् १९८० मे ही इन दोनो बड़े देशो ने एक-दूसरे की जासूसी के लिए १०३ सैन्य उपग्रह अन्तरिक्ष मे छोड़े। रूस ने ८९ और अमेरिका ने १४ उपग्रह छोडे।

एक अनुमान के अनुसार पिछले दस वर्षो मे अन्तरिक्ष मे छोडे उपग्रहो मे से ६० प्रतिशत सैनिक उद्देश्यो के लिए थे। इस समय अन्तरिक्ष मे विभिन्न देशो के करीब १००० जासूसी उपग्रह चक्कर काटकर सैनिक उद्देश्यो से सम्बन्धित सूचनाए धरती पर प्रेषित कर रहे है।

पता चला है कि रूसी वैज्ञानिको ने उच्च शक्तिशाली लेसर किरणो से उपग्रहो को अन्तरिक्ष मे १४० किलोमीटर की दूरी तक दृष्टिहीन या निष्क्रिय करने मे सफलता प्राप्त कर ली है। रूस की कास्मस ९५४ उपग्रह योजना तो अन्तरिक्ष मे घूमने वाले उपग्रहो की जासूसी के लिए ही है। सन् १९७९ मे सैन्य उद्देश्यो के लिए अमेरिका ने हर तेईसवे दिन उपग्रह छोडे। इन दिनो मे ही रूस ने हर चौथे दिन उपग्रह छोडा। इस तरह के परीक्षण रूस मे अभी जारी है। अमेरिका रक्षा विशेषज्ञो का कहना है कि रूस सन् १९८५ तक ११० टन वजन का एक अन्तरिक्ष स्टेशन कायम करने मे सफल हो जायेगा, जहां १२ से १४ तक अन्तरिक्ष यात्री आसानी से रह सकेंगे। सी० आई० ए० के विशेषज्ञो का कहना है कि रूस घातक लेसर किरणो से उपग्रहो को नष्ट करने की योजना मे काफी हद तक सफल हो चुका है। अन्तरिक्ष में विभिन्न जगहो मे १८ लेसर-युक्त अन्तरिक्ष स्टेशनो से सिर्फ २० मिनट मे १००० प्रक्षेपणास्त्र नष्ट किए जा सकते है। इस संभावित रूसी खतरे से बचाव के लिए अमेरिका मे अब एक ऐसी

योजना कार्यान्वित की जा रही है जिसके अन्तर्गत भूमध्यरेखा पर १८२००० किलोमीटर पर अन्तरिक्ष मे जासूसी उपग्रह स्थापित किए जाएं ताकि वे रूसी लेसरयुक्त उपग्रहो की पकड से दूर रहे। इस तरह के उपग्रह परमाणु-युद्ध की स्थिति मे भी सुरक्षित रहेगे।

रूस १५० मील ऊचाई तक के उपग्रहो को नष्ट करने की क्षमता तो प्राप्त कर ही चुका है। अब ३०००० मील ऊचाई तक घूमते उपग्रहो को नष्ट करने के लिए अनुसधान कर रहा है। अमेरिका के ज्यादातर उपग्रह २०००० मील ऊचाई पर है। इससे अनेक प्रकार की टोही इलेक्ट्रॉनिक जासूसी प्रणालियां नष्ट किए जाने की आशका हो गयी है। रूस अन्तरिक्ष मे पहुचने वाले एक ऐसे विमान का भी विकास कर रहा है जिससे अन्तरिक्ष स्टेशनो पर काम करने वाले दस्ते तथा साज-सामान पहुंचाया जा सके। कास्मोल्पोत नामक इस विमान का बार-बार प्रयोग हो सकेगा। इस योजना मे छोटे उपग्रहो को नष्ट करना भी शामिल है। कास्मोल्पोत योजना पर अभी मास्को के निकट रोमन्सक्यो परीक्षण हवाई अड्डे मे स्थित सेण्ट्रल इस्टीट्यूट ऑफ एयरो हाईड्रो डायनामिक्स प्रयोगशाला मे परीक्षण चल रहे है। उम्मीद है कि रूस १९८२ तक कास्मोल्पोत की उड़ाने शुरू कर देगा।

नोरड के अनुसार ४ अक्तूबर, १९५७ से लेकर अब तक ८ देशो ने ११३०० उपग्रह छोडे जिनमे से कुछ नष्ट हो गये, कुछ अन्तरिक्ष मे चक्कर काट रहे है और ४५४५ उपग्रहो के टुकड़े अभी तक अन्तरिक्ष मे है।

अमेरिका मे भी सीलिट लेसर सिस्टम के अन्तर्गत लेसरयुक्त ऐसे उपग्रहो का परीक्षण चल रहा है जो अन्य उपग्रहो को अन्तरिक्ष मे ही नष्ट कर दे। न्यु मेक्सिको की लासअवामास साइटीफिक लेबोरेटरी मे इस तरह के परीक्षण हो रहे है कि ५००० किलोमीटर, ३१०० मील दूर तक अन्तरिक्ष मे घूमते उपग्रहो को कैसे नष्ट किया जाये। कैलीफोर्निया की वारेस लिवर मोर प्रयोगशाला मे भी कुछ अन्य प्रकार के उपग्रह नष्ट करने वाली किरणो पर परीक्षण जारी है। इस समय अमेरिका के दूरस्थ स्थानो पर तैनात आधी से अधिक फौजो का नियत्रण और संचालन अतरिक्ष मे घूमते सैन्य उपग्रहो के जरिये हो रहा है।

इस समय अन्तरिक्ष मे जासूसी करने वाला अमेरिकी उपग्रह है १२ टन वजन का 'बिग बर्ड' और सबसे गुप्त उपग्रह है एस० आर० १७ ब्लेक बर्ड। ये रूस के ऊपर अन्तरिक्ष मे बहुत अधिक ऊचाई पर स्थापित है। इन उपग्रहो को नष्ट करने के लिए रूसी गुट ने ६०० बार प्रयास किए, किन्तु सभी नाकामयाब रहे। अमेरिका की अतरिक्ष शटल कोलम्बिया की सफल उड़ान और वापसी से कई सभावनाओ के रास्ते खुल गए है। अन्तरिक्ष मे स्टेशन बनाने, कारखाने स्थापित करने तथा पृथ्वी-अन्तरिक्ष और खगोलीय पिंडो के गहन अध्ययन से नये

द्वार खुले है। इसका सामरिक पहलू सबसे महत्त्वपूर्ण है। शटल से जासूसी उपग्रह छोडे जा सकेंगे और अन्तरिक्ष मे ३०० से ५०० मील की ऊचाई तक एक शक्तिशाली दूरबीन कक्ष मे स्थापित की जा सकेगी जो आसपास के इलाको को दस-गुनी ज्यादा दूरी तक देख सकेगी। इससे अन्तरिक्ष शटल अन्तरिक्ष वाहन के रूप मे प्रयुक्त हो सकेगी जिसके जरिये पृथ्वी के चारो तरफ लेसर तथा आयन पुज अस्त्र कक्ष मे स्थापित किए जा सकेगे। इस तरह शटलो से शत्रु-देशो के उपग्रहो को पास से उडकर आसानी से पकडा जा सकता है और अन्तरिक्ष मे विचरण करते हुए अन्तरिक्ष यात्री शटल से ही उपग्रहो को नष्ट कर सकता है।

न्यूट्रॉन बम के आविष्कारक अमेरिकी वैज्ञानिक सैमुअल कोहन ने भविष्यवाणी की है कि तीसरा विश्वयुद्ध अवश्य होगा जिसमे परमाणु अस्त्रो का प्रयोग किया जायेगा। युद्ध-विशेषज्ञो ने १९८५ से १९९९ के बीच परमाणु बम की आशका व्यक्त की है। तीन स्थलो को सभावित परमाणु युद्ध का स्थल बताया गया है। ये है—अरब-इजरायल क्षेत्र, भारत-पाकिस्तान और चीन क्षेत्र, दक्षिण अफ्रीका और पडोसी देश। रूस और अमेरिका सीधे आमने-सामने कभी नही टकरायेगे। वे तलाश मे है ऐसे देशो की जिनके कधो पर रखकर अपने हथियार चला सके और अपनी ताकत आजमा सके।

सामूहिक नर-सहार के लिए जीवाणु रोग, विषाणु बम, जहरीले रसायन व गैसे, दूर-मारक मिसायले, मृत्यु-किरणो और लेसर किरणो से युक्त ऐसे-ऐसे हथियार बन गए है जिनका उपयोग विश्व का अस्तित्व और मानव-सभ्यता का नामोनिशान मिटा सकता है।

आज के युद्ध के बारे मे लोग सामूहिक नर-सहार के लिए जीवाणु हथियारो को आदर्श हथियार मानने लगे है, क्योकि पहले तो वह सबसे सस्ता है। दूसरे, इसके भडार को आसानी से छिपाया जा सकता है। तीसरे, इसके प्रयोग से आदमी, पशु आदि प्राणधारी तो मरेगे पर सम्पत्ति नष्ट नही होगी। इन कारणो से जीवाणु हथियारो को अच्छे हथियार माना जाता है। पर यदि हम मानवीय दृष्टि से विचार करे तो सहज ही समझ मे आ जायेगा कि शस्त्रो के इस आविष्कार ने मनुष्य को कितना निर्दयी बना दिया है।

सयुक्त राष्ट्रसघ के महासचिव श्री कुर्त वाल्दहाइम का कहना है कि दुनिया युद्ध के विनाशकारी मैदान मे तैयार खडी है। इस स्थिति को नरभक्षी बमो के निर्माण द्वारा नही बदला जा सकता। परमाणु बम के बारे मे धारणा थी कि वह इतना विनाशकारी है कि उसका प्रयोग करने का साहस शायद कोई भी राष्ट्र नही कर पाएगा। इस प्रकार उसे युद्ध-प्रतिरोधक अस्त्र भी मान लिया गया था। परन्तु न्यूट्रॉन बम ने इस बाधा को भी दूर कर दिया है। क्योकि इस बम के प्रयोग मे केवल व्यक्ति मारे जायेगे मकान, कारखाने आदि नष्ट नही होगे। बल्कि सभव

तो यह है कि इस आयुध के हाथ आ जाने से पहल करने का सकोच भी मिट जाएगा और युद्ध का खतरा और गहरा हो जाएगा। इस समूचे प्रसग मे दुर्भाग्यपूर्ण वात तो यह है कि न्यूट्रॉन वम को सौदेवाजी की अमोघ शक्ति मान लिया गया है। यद्यपि कुछ लोग इसे प्रतिरक्षात्मक शस्त्र के रूप मे विकसित करने की वात करते है, पर इस वात की कोई गारटी नही है कि कव इसे दूसरो को घुटने टेकने या आतकित करने के काम मे नही लिया जाएगा। सचमुच यदि युद्ध छिड गया तो कुछ लोगो की लडाई मे वाकी के लोग वेमौत मारे जायेगे।

ऐसी स्थिति मे भगवान् महावीर का यह वाक्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण वन जाता है कि शस्त्रो की दौड को शस्त्रो से नही रोका जा सकता। यदि शस्त्रो के प्रसार को रोकना है तो इस वाक्य पर ध्यान देना होगा—'नत्थि असत्थ परेण पर'—अशस्त्र मे कोई परम्परा नही है। हर क्रिया प्रतिक्रिया को जन्म देती है। अच्छा है समय रहते इस सत्य को पहचान लिया जाये, अन्यथा महाविनाश के वाद समझने का कोई अर्थ ही नही रह जायेगा।

इस दृष्टि से शस्त्रो के विकास से होने वाले महाविनाश से वचने का एकमात्र उपाय अहिंसा ही है। जैन धर्म की दृष्टि से अहिंसा का एक वहुत सूक्ष्म आचार है। वहा तो छोटे से छोटे—यहा तक कि एकेन्द्रिय प्राणी की हिंसा को भी त्याज्य माना गया है। पर सामान्य व्यक्ति के लिए यह सभव नही है। इस दृष्टि से यदि मनुष्य को केन्द्र मे रखकर भी विचार किया जाये तो भी वहुत सारी हिंसा से वचा जा सकता है।

वहुत सारे लोग व्यक्तिगत रूप से अहिंसा का अत्यन्त सूक्ष्मता से पालन करते हे। वास्तव मे यही हिंसा से लडने का सही तरीका है। एक व्यक्ति की अहिंसा-साधना भी अपने आसपास को प्रभावित करती हे। पर आज उसके सामूहिक वल को जगाने की सवसे वडी आवश्यकता है।

वास्तव मे शस्त्रो के विकास के पीछे भय का वहुत हाथ रहता है। इसीलिए भगवान् महावीर ने अहिंसा के विकास के लिए अभय पर वहुत वड़ा वल दिया है। आज की शस्त्र-सज्जा से लडने का एकमात्र उपाय अभय ही हो सकता है।

जैन धर्म और प्रदूषण

दुनिया मे अपना एक निश्चित सन्तुलन है। सारी प्रकृति तालवद्ध तरीके से चल रही है। कुछ लोग मानते है कि इस गतिमयता के पीछे ईश्वर का हाथ है। वही सृष्टि की सर्जना करता है, वही इसका पोषण करता है और वही इसका विनाश करता है। पर जैन दर्शन ऐसी किसी ईश्वर-शक्ति मे विश्वास नही करता। उसके अनुसार तो सव कुछ अपने प्राकृतिक नियमो के अनुसार ही हो रहा है। फिर भी मनुष्य एक ऐसा प्राणी है जो इस प्राकृतिक व्यवस्था को लाघकर अपने असंयम से या वैज्ञानिक प्रगति के नाम पर कुछ ऐसा प्रयत्न कर रहा है जिससे इस सहज सन्तुलन के विगड़ने का खतरा पैदा हो रहा है। हो सकता है मनुष्य का यह अतिक्रमण किसी भावी प्राकृतिक समीकरण-सरचना की एक कडी हो, जो अज्ञात-भाव से उसे प्रेरित कर रही है। पर क्या ऐसा भी नही सोचा जा सकता कि किसी सभाव्य को असमय मे घटित होने के लिए आमन्त्रित कर रहा है?

धर्म परम विज्ञान

महावीर की दृष्टि से ह्रास और विकास, चय और अपचय—प्रत्येक पदार्थ का सहज धर्म है। उसे रोका नही जा सकता। जैसे जीवन सहज है, वैसे ही मृत्यु भी सहज है। उनका कहना है कि तुम किसी के जीवन-मरण के साथ मत जुड़ो। यदि जीवन होता है तो मरण होगा ही, उसे वचाया नही जा सकता। पर यदि तुम उसके साथ जुडते हो तो वधते हो। ससार अपने नियमो से चलेगा पर जो ससार के साथ वंधता नही है, किसी के विनाश का अनुयोक्ता नही वनता, वह मुक्त हो जाता है। इसी अर्थ मे उनका सारा जीवन-दर्शन एक साधना-पथ वन जाता है।

यद्यपि धर्म का लक्ष्य है भौतिक सम्वन्धो से टूटना। भूत और आत्मा दो भिन्न दिशाएं है। मुक्ति का अर्थ है अपने आपको भौतिक प्रभाव से मुक्त कर लेना।

पर यदि उसका सही तरीके से पालन किया जाए तो वह ससारस्थ लोगो के लिए भी वरदान बन सकता है। धर्म के बारे मे लोगो का खयाल है कि वह विज्ञान-विमुख है। उनका अभिमत है कि विज्ञान मनुष्य के सुख-सुविधा के साधन जुटाता है, धर्म उसका विरोध करता है। पर वास्तव मे बात ऐसी नही है। धर्म विज्ञान का विरोधी नही है, अपितु वह परमविज्ञान है। विज्ञान ने मनुष्य को जिन सुख-सुविधाओ का आश्वासन दिया था, वे आज उसके लिए एक दु खद चुनौती बन गयी है। इस दृष्टि से यदि हम जैन-धर्म का अध्ययन करें तो पता चलेगा कि उसके सारे विधि-निषेध अन्तत एक व्यापक सन्तुलन को बनाये रखने मे महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले है।

अहिंसा का वैज्ञानिक महत्त्व

जैन धर्म के अनुसार अहिंसा एक मुख्य आचार है। उसका आध्यात्मिक मूल्य तो है पर आज विज्ञान ने भी इस सिद्धान्त पर उपयोगिता की मुहर लगा दी है। आज अहिंसा का अर्थ केवल पारलौकिक ही नही रह गया है अपितु प्रत्यक्ष जीवन के साथ भी उसका गहरा अर्थ समझ मे आने लगा है। जैन धर्म जीवन का अस्तित्व केवल आदमियो, पशुओ या कीडो-मकोडो मे ही नही मानता अपितु पृथ्वी, पानी, अग्नि, हवा तथा वनस्पति—इन पचभूतो मे भी उसका अस्तित्व स्वीकार करता है। वास्तव मे जीवन की यह सूक्ष्म स्वीकृति जैन धर्म की अपनी एक विशिष्ट स्वीकृति है। इसलिए स्थावर—स्थिर रहने वाले सूक्ष्म जीव की हिंसा से बचने के लिए जैन धर्म ने जितना गहरा विचार किया है उतना किसी धर्म ने नही किया। आज विज्ञान भी वनस्पति मे तथा एक दृष्टि से पानी मे भी जीवन स्वीकार करने लगा है। पर एक जमाना था जब विज्ञान को यह स्वीकृत नही था। जैन आगम ग्रन्थो मे पृथ्वीकाय, अप्काय आदि पाच स्थावर जीवो के बारे मे बहुत विस्तार से वर्णन किया गया है। वे जीव किस तरह आहार ग्रहण करते हे, किस तरह श्वासोच्छ्वास लेते है, उनके पास कैसा शरीर है, कितनी इन्द्रियां हैं, उनमे कितने प्राण है आदि प्रश्नो पर बहुत गहराई से विचार किया गया है। प्रो० सी० एन० वकील ने अपनी पुस्तक 'इकोनॉमिक्स ऑफ काऊ प्रोटेक्शन' मे कहा है—'हमें यह कभी न भूलना चाहिए कि मिट्टी, वनस्पति, पशु और मानव का परस्पर मे गहरा सम्बन्ध है। जिस प्रकार मानव मे जीवन है, पशु और वृक्ष आदि सजीव है, उसी प्रकार मिट्टी भी सजीव है। सुनने मे यह बात भले ही अजीब लगे, पर अक्षरश. सत्य है। कोट्यानुकोटी अतिसूक्ष्म ऑर्गनिज्म मिट्टी मे सदा क्रियारत रहते है।' सम्भव है आगे जाकर विज्ञान शेष भूतो मे भी जीवन के अस्तित्व को स्वीकार कर ले। पर इतना तो स्पष्ट है कि आज विज्ञान भी पृथ्वी

आदि भूतो के उपयोग के वारे मे जिस दृष्टि से विचार करने लगा है उससे जैन धर्म की अहिंसा मान्यता को एक नया आयाम मिला है। यद्यपि जैन धर्म जहा प्राणविनाश की दृष्टि से अहिंसा पर विचार करता है वहा विज्ञान उस पर प्रदूषण की दृष्टि से विचार कर रहा है। जैन धर्म जहां प्राणिमात्र की दृष्टि से अहिंसा पर विचार करता है वहा विज्ञान केवल मनुष्य की दृष्टि से विचार करता है। पर फिर भी परिणाम की दृष्टि से दोनो एक ही केन्द्र पर आकर मिल जाते है।

प्रदूषण शब्द से आज सभी परिचित है, परन्तु प्रदूषण की कोई सर्वमान्य परिभाषा सम्भव नही है। अमेरिकी राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी (१९६६) के अनुसार वायु, पानी, मिट्टी, पौधे, पेड और जानवर—सभी मिलकर पर्यावरण अथवा वातावरण की रचना करते है। ये सभी घटक पारस्परिक सन्तुलन बनाये रखने के लिए एक-दूसरे को प्रभावित करते है, जिसे 'परिस्थिति-विज्ञान सम्बन्धी सन्तुलन' कहते है। जब एक सीमा से अधिक विकास के लिए प्रकृति का उपयोग किया जाता है तो हमारे पर्यावरण या वातावरण मे कुछ परिवर्तन होता है, अगर इन परिवर्तनो की प्रक्रिया का प्रकृति के साथ सामजस्य नही किया जाता और परिस्थिति-विज्ञान सम्बन्धी सन्तुलन को बनाये नही रखा जाता, तो उससे न केवल विकास-व्यय के बढने का खतरा पैदा होता है, बल्कि उससे ऐसा असन्तुलन पैदा हो सकता है जिससे पृथ्वी पर मनुष्य-जीवन खतरे मे पड सकता है। यही असन्तुलन प्रदूषण पैदा करता है।

पृथ्वीकाय की अहिंसा

भगवान् महावीर ने कहा है—'त परिण्णाय मेहावी नेव सव पुढवि-सत्य समारभेज्जा नेवण्णेहिं पुढवि-सत्य समारभावेज्जा, नेवण्णे पुढवि-सत्य समारभेते समणु जाणेज्जा'—आचाराग : १-३४। मेधावी पुरुष हिंसा के परिणाम को जानकर स्वय पृथ्वी शस्त्र का समारभ न करे, दूसरो से उसका समारभ न करवाये, उसका समारंभ करने वालो का अनुमोदन न करे।

जमिण विरुवेरुवेहिं सत्थेहिं पुढवि-कम्मसमारभेण पुढवि—सत्य समारभेमाणे अण्णेवेणेगरवे पाणे विहसई—आचाराग · १-२७। नाना प्रकार के शस्त्रो मे पृथ्वी सम्बन्धी क्रिया मे व्यापृत होकर पृथ्वीकायिक जीवो की हिंसा करने वाला व्यक्ति (न केवल उन पृथ्वीकायिक जीवो की ही हिंसा करता है, अपितु) नाना प्रकार के अन्य जीवो की भी हिसा करता है।

उपरोक्त उद्धरणो मे महावीर ने पृथ्वीकाय की हिंसा का निषेध किया है। आज अनेक प्रकार के खनिज पदार्थों के लिए—खासकर पत्थर के कोयले के

लिए—पृथ्वी का जबरदस्त दोहन किया जा रहा है। भूवैज्ञानिको ने आशका प्रकट की है कि यदि इसी प्रकार खनिज पदार्थो का उपयोग किया गया तो कुछ ही वर्षो मे उसके भडार नि शेष हो जायेगे। दुनिया मे जब से औद्योगीकरण की लहर आयी है तब से ही पत्थर के कोयले के जलने से उसकी धूल, कार्बन डाईऑक्साइड, सल्फर डाईऑक्साइड तथा कुछ ऑर्गनिक गैसो के रूप मे प्रदूषणकारी पदार्थो की भरमार हो गयी है। बडे शहरो तथा कारखानो के आसपास इसका प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगा है। यद्यपि चौदहवी शताब्दी मे इग्लैड जैसे शहरो मे कोयले के जलाने पर प्रतिबध लगाया गया था, पर तथाकथित सभ्यता तथा औद्योगिक विकास के इस युग मे यह कैसे सम्भव हो सकता है? यदि पृथ्वीकाय की जीवो की हिसा बन्द कर दी जाये तो कोयला तो बचेगा ही, पर वायु-प्रदूषण पर भी काबू पाया जा सकेगा। इस प्रकार पृथ्वीकाय की हिसा केवल पृथ्वीकाय की हिसा ही नही है अपितु उसके साथ वातावरण का सतुलन भी गहरे अर्थ मे प्रभावित होगा। भगवान् महावीर ने कहा है—'जस्सेते पुढवि कम्म समारभा परिणाता भवति, सेहु मुणि परिणात कम्मे'—जिसके पृथ्वी सम्बन्धी कर्म समारभ परिज्ञात हो जाते है वह उस हिसा से निवृत्त हो जाता है।

जल-प्रदूषण

जैन धर्म की दृष्टि से पानी एक सजीव तत्त्व है। एक तो वह स्वय सजीव तत्त्व है, उसमे अप्काय के स्थावर जीव पाये जाते है, तथा दूसरे उसके आश्रय मे वनस्पतिकाय के स्थावर तथा त्रसकाय के द्वीन्द्रिय आदि जीव पलते है। जल-प्रदूषण से अप्काय की हिसा तो होती ही है पर वनस्पति, द्वीन्द्रिय प्राणी, मछलियो, यहां तक कि उसका प्रदूषण मनुष्य को भी प्रभावित करता है। यो देखा जाय तो वायु के बाद मनुष्य के लिए पानी की सबसे ज्यादा आवश्यकता है। पानी मे मनुष्य का मल फेकने से भी उसमे भयकर प्रदूषण पैदा होता है। 'सेन्ट्रल बोर्ड फॉर प्रिवेशन एण्ड कंट्रोल ऑफ वाटर पोल्युशन' के अध्यक्ष ने कहा था—प्रतिदिन दिल्ली मे यमुना मे दस करोड लीटर मल निर्यात होता है, जबकि उसमे दो करोड लीटर कचरा भी उद्योगो द्वारा छोडा जाता है।

जीवन के लिए प्राणवायु एक अत्यन्त आवश्यक शर्त है। हमारी पृथ्वी पर ५० से ७० प्रतिशत प्राणवायु का उत्पादन पानी मे पैदा होने वाली सूक्ष्म वनस्पति फायटोप्लैंक्टन से होता है। वह सूर्य से प्रकाश-संश्लेषण कर पानी में हाइड्रोजन और ऑक्सीजन को विभक्त करती है। इस प्रकार पानी हमारी दुनिया के जीवन का एक मुख्य स्रोत है। पर आज उसमें भयकर प्रदूषण पैदा हो रहा है।

कारखानो मे पानी का भारी मात्रा मे प्रयोग होता है। जब वह पानी रासायनिक क्रियाओ से गुजरकर वाहर आता है तो इतना प्रदूषित हो जाता है कि मनुष्यो के क्या, जानवरो तक के भी पीने लायक नही रह जाता है। खासकर तालावो और नदियो मे इसका प्रभाव अधिक पडता है। १९६८ मे वरौनी के पेट्रोल-शोधन कारखाने से निकलने वाले कचरे से गगा का पानी इतना दूषित हो गया कि कुछ दिनो के लिए मुगेर शहर की जलपूर्ति को बन्द करना पड़ा। १९७५ मे दिल्ली मे यमुना मे भी प्रदूषण हो गया था जिससे यहां की जलसेवा भी प्रभावित हो गयी थी। ससद सदस्य श्री मुरलीमनोहर जोशी के अनुसार दिल्ली के पानी मे इतना अमोनिया हो गया कि उस दृष्टि से वह पेशाब के तुल्य हो गया। गोआ के खाद के एक कारखाने को भी इसीलिए वन्द करना पडा।

हाल ही के सर्वेक्षणो द्वारा ज्ञात हुआ है कि प्रतिवर्ष लगभग दो लाख व्यक्ति जल-प्रदूषण से मर रहे है। अमेरिका की इरी झील, स्विट्जरलैड तथा जर्मनी के सीमाप्रदेश स्थित ज्युरीच झील को भी भयकर जल-प्रदूषण से होकर गुजरना पडा है।

इग्लैड मे प्रतिदिन एक हजार मिलियन लीटर कचरा टेम्स नदी मे फेका जाता है। जर्मनी की राईन नदी में करोडो मछलियां प्रदूपित कचरे के कारण मर गयी। स्विट्जरलैड के जिनेव्हा सागर का पानी एक समय वडा स्वच्छ तथा शीतल था। पर आज यदि कोई उस पानी का उपयोग कर लेता है तो अनेक दुर्धर्ष रोगो से आक्रान्त हो जाता है। १९७० मे अकेले अमेरिका ने १.२ करोड टन सीसा पानी और हवा मे छोडा था। इससे प्रशात महासागर के मत्स्य भारी मात्रा मे प्रभावित हुए। १९६० मे आयरलैड के समुद्र मे हजारो समुद्रपक्षी कीटनाशक पदार्थो, पॉलिक्लोरिनेट तथा वायफेजिल्स के कारण मर गये थे। इन पदार्थो का उद्योग-धन्धो मे ही नही वल्कि सौन्दर्य-प्रसाधन तथा वानस्पतिक कीटाणुओ के नाश के लिए भी उपयोग होता है।

वास्तव मे औद्योगिक विकास के लिए शहरो का विस्तार होना निश्चित है। ज्यो-ज्यो शहर वढ़ते हैं त्यो-त्यो प्रदूषण वढना भी अनिवार्य है। मशीनीकरण जल तथा हवा के प्रदूषण का मुख्य अंग है। भिन्न-भिन्न प्रकार की भट्ठियो मे प्रयोग आने वाले पानी की वाष्प तथा धुए से हवा मे वहुत वडा प्रदूषण होता है तथा नदियो और तालावो का पानी प्रदूषित हो जाता है। भारत की ८०। प्रतिशत आवादी जो देश की १४ वड़ी नदियो के किनारे पर वसी हुई है, पानी के प्रदूषण मे प्रभावित है। आन्ध्र प्रदेश के वेलूर ग्राम मे १०० से अधिक मनुष्य एक अज्ञात विप मे पीडित हुए, जिनमे से तीन वालको की अस्पताल मे मृत्यु हो गयी। सक्रामक विपाणु को शास्त्रीय स्तर पर जांच के लिए नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ न्यूट्रीशन, हैदरावाद अनुसंधान केन्द्र की ओर मे विप-विज्ञानवेत्ता डॉ० रमेश

भटट को भेजा गया।

डॉ० भट्ट ने अगम्य विषाणु के विकास व उससे सुरक्षा के उपाय ज्ञात करने के लिए वेलूर ग्राम के जन-स्वास्थ्य का सर्वेक्षण किया। यह ग्राम वकियम नहर के पास है। इसी नहर के पास 'कल्पकम्' आणविक आटोमिक पावर-स्टेशन है। नहर मे 'म्यूस्सेल' नामक मछलियां मिलती है।

डॉ० भट्ट ने जब इन मछलियो की शास्त्रीय जाच की तो मछली के शरीर-कोष मे विष-कण पाये। वेलूर ग्राम के लोग अपने आहार मे अकसर म्यूस्सेल मछलियो का उपयोग करते है। डॉ० भट्ट ने पाया कि म्यूस्सेल मे विष नहर के दूषित जल से आया हुआ था।

यह भी पाया गया कि 'कल्पकम्' आणविक रिएक्टर से उत्पन्न रेडियोधर्मी दूषण से जल दूषित नही हुआ था बल्कि कल्पकम् की कालोनी मे लोगो का समस्त मल वकियम नहर मे विसर्जित करने की जो व्यवस्था है वह वेलूर ग्राम के लिए अभिशाप हो गयी थी। इस मल से ही नहर का जल दूषित हुआ और मछलियो मे विष पहुच गया।

ज्योलोजिकल सर्वे ऑफ इडिया की एक अनुसधान शाखा मद्रास मे है। इसमे कार्यरत वैज्ञानिक डॉ० डेनियल ने हाल ही मे अपनी रिपोर्ट मे कहा है कि पूर्वी तथा पश्चिमी तट के नागरिको के स्वास्थ्य के लिए खतरा बढ रहा है।

उन्होने अपनी रिपोर्ट मे स्पष्ट किया है कि बडे बदरगाहो के समीप तेलवाहक जहाज से जल-दूषण की मात्रा मे अत्यधिक वृद्धि हो रही है। प्राय: जहाज के टैकरो से पेट्रोल, क्रूड आयल व अन्य प्रकार के तेल सागर मे बहाये जाते हैं।

रिपोर्ट कहती कि बम्बई, मद्रास व कलकत्ता मे बिकने वाली मछलियो मे विष तत्त्व पाये गये है। इससे लोगो मे कैसर का प्रसार हो रहा है। तेल से दूषित जल मे छोटे जीव-जन्तु पलते है, जिन्हे मछलिया अपना भक्ष्य बनाती है। फलत: ऐसी मछलियो मे धीरे-धीरे एक प्रकार का नैसर्गिक विष तत्त्व बनता है जो मछलियो के स्वास्थ्य के लिए नही, परन्तु मनुष्य के लिए अत्यन्त घातक है।

डॉ० डेनियल ने अपनी रिपोर्ट मे यह भी सकेत दिया है कि प्रतिवर्ष लगभग १७०० लाख गैलन घरेलू एव अस्पताल का मल भी सागर मे विसर्जित होता है जिससे सागर मे जल-दूषण बढा है।

नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ ओशनोग्राफी (गोवा) के एक वैज्ञानिक दल ने हाल ही मे अपनी रिपोर्ट मे कहा है कि पूर्वी तथा पश्चिमी तट के सागर-जल का 'प्रदूषण' तटीय मे बढते उद्योग प्रतिष्ठानो को विद्युतपूर्ति करने के लिए थर्मल पावर स्टेशनो की सख्या मे वृद्धि की देन है। थर्मल पॉवर स्टेशनो मे सागर

जल से यत्र का ताप नियत्रित करने की प्रक्रिया मे जल की सैकडो मछलिया मर जाती है। इन मृत मछलियो व अन्य मृत जीवो से भी जल दूपित हो जाता है।

डॉ० हक्यू ने अपनी रिपोर्ट मे कहा है कि वम्वई जैसे तटीय नगरो मे उपलब्ध मछलियो मे पारा विप-तत्त्व पाया गया है। इसकी मात्रा प्रति एक किलो मछली मास मे लगभग ०.०३७ से ० ७६६ मि० ग्रा० पारे के रूप मे है। इस समय देश मे सर्वाधिक दूपित जल यमुना नदी का है। इसका सीधा सम्वन्ध दिल्ली के नागरिको के स्वास्थ्य से बना है।

यात्रिक युग का यह अभिशाप पश्चिमी राष्ट्रो, खासकर अमेरिका तथा जापान मे भयावह रूप से व्याप्त है। पर धीरे-धीरे यह अभिशाप उन्ही देशो तक नही, अपितु सारे ससार मे फैलता जा रहा है। इससे मानवीय अस्तित्व को ही खतरा पैदा हो गया है। विकसित देश तो उससे लडने के लिए कुछ साधन भी जुटा सकते है, पर विकासमान देशो के पास यह उपाय भी नही है। भारत मे वम्वई जैसे शहरो मे जल-प्रदूपण इतनी तीव्रता से वढ रहा है कि वहा के निकट समुद्र मे स्नान करना भी खतरे से खाली नही है। वैज्ञानिको का अनुमान है कि प्रदूषण की यही गति रही तो एक दिन समुद्र भी प्रदूपित हो जाने वाले है। क्योकि पानी का प्रदूषण चाहे तालाव मे हो, चाहे नदी मे, अन्तत वह समुद्र मे ही मिलने वाला है तथा वह प्रदूपण मनुष्य को ही प्रभावित करनेवाला है। क्योकि एक ओर उससे प्राणवायु के उत्पादन का सन्तुलन विगड जायेगा तो दूसरी ओर जलजीवो मे सग्रहीत विपाणु भिन्न-भिन्न रूपो मे फिर मनुष्य तक पहुच जायेगे। इसलिए भगवान् महावीर ने कहा है—'तसे अहियाई तसे अवोहिये'—जल की यह हिंसा मनुष्य के अहित तथा अवोधि का कारण है।

ईंधन तथा वायु का प्रदूषण

वायु का प्रदूपण आज के युग की एक ज्वलत समस्या है। वातावरण हमारे परिसर का एक प्रमुख अग है। उचित प्रमाण मे मिली हुई हवा का यह आवरण हमारी पृथ्वी को लपेटे हुए नही होता तो इसकी भी वही स्थिति होती जो आज मनुष्य की है।

वायुमण्डलीय प्रदूपण का एक गम्भीर पक्ष हाल मे ही सामने आया है। ऊपरी वायुमण्डल की ओजोन परत को नाइट्रोजन के ऑक्साइडो से चोट पहुंचने का खतरा उत्पन्न हो गया है। ओजोन परत के किसी भी रूप मे दुर्घटनाग्रस्त होने से पृथ्वी पर जीवधारियो का जीवन ही खतरे मे पड जायेगा। पृथ्वी पर ऑक्सीजन का स्रोत ओजोन ही है। साथ ही पृथ्वी पर सूर्य के प्रकाश से परावैगनी

विकिरणो को रोकने का अथवा सोखने का काम भी यह परत करती है। यदि ये विकिरण पृथ्वी पर सीधे पहुच जाए तो त्वचा का कैंसर, आखो के रोग आदि हो सकते है। वातावरण की शुद्ध हवा ने यहा प्राणियो को जीवन का आधार प्रदान कर रखा है। पर मनुष्य ने अपनी सुख-सुविधाओ के लिए तीव्रता से उसे दूपित करना शुरू कर दिया है। उद्योग-धधो के अमर्यादित विस्तार तथा यातायात के द्रुत साधनो के विकास के कारण जो कचरा तथा अनावश्यक पदार्थ जल, स्थल तथा हवा मे छोड़े जाते है, उनसे सारा वातावरण झपाटे के साथ प्रदूपित होता जा रहा है। यदि इस पर नियन्त्रण नही किया गया तो थोड़े दशको के पश्चात् ही इस ग्रह पर मानवजाति के अस्तित्व को ही खतरा पैदा हो जायेगा—ऐसा वैज्ञानिको का अभिमत है।

सर्वेक्षण द्वारा ज्ञात हुआ है कि पिछले सौ वर्षो मे वायुमण्डल में कार्वन डाईऑक्साइड की मात्रा मे १६ प्रतिशत की वढोतरी हो चुकी है, जो मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। अगर कार्वन डाईऑक्साइड की मात्रा हमारे वातावरण मे निरन्तर वढती रही तो मनुष्य एव जानवरो के शरीर हेतु आवश्यक प्राणवायु का अनुपात घट जायेगा। घटते अनुपात के कारण शहरी प्रभागो व महानगरीय इलाको मे लोगो मे श्वास-रोग और नेत्र-रक्तिमता वढ रही है। आज स्थिति यह है कि वायुमण्डल मे सन् १८७० की अपेक्षा ग्यारह प्रतिशत कार्वन डाईऑक्साइड अधिक है।

दूषित हवा का खतरा

कार्वन डाईऑक्साइड वढने सम्वन्धी चिन्ता का पहलू एक और भी है। सयुक्त राष्ट्र सघ की पर्यावरण सम्वन्धी एक सस्था 'यूनेप' के पिछले वीस वर्पो के एक अध्ययन के अनुसार पृथ्वी की कुल पैदा होनेवाली कार्वन डाईऑक्साइड को कार्वन-चक्र मे लाने की क्षमता कम पटती जा रही है। कहने का तात्पर्य यह है कि कार्वन डाईऑक्साइड की मात्रा जो पेडो, समुद्रो, जीवधारियो आदि मे पुन सोखी न जा सके वह वढती जा रही है। यदि स्थिति यही रही और कार्वन डाईऑक्साइड भी इसी दर पर ईंधन आदि के जलने से वायुमण्डल मे छोडी जाती रही तो अगले सौ साल मे पृथ्वी पर कार्वन डाईऑक्साइड की मात्रा पहले से दुगुनी हो जायेगी।

नैसर्गिक शुद्ध हवा का प्रदूपण मुख्यत ईंधन के जलने तथा विविध औद्योगिक प्रक्रियाओ से हवा मे छोडे जानेवाले पदार्थो के कारण होता है। कारखाने से निकलनेवाले धुए मे हवा को प्रदूपित करनेवाले दो पदार्थ होते हैं—एक तो धूल तथा दूसरा सल्फर डाईऑक्साइड। कुछ अन्य प्रकार के प्रदूपण भी उनमे उत्पन्न

होते है पर उनका प्रमाण अत्यन्त अल्प होता है। पत्थर के कोयले तथा खनिज तेलो के रूप मे जो ईधन काम के लिए आता है उसमे एक से तीन प्रतिशत से कुछ अधिक गधक होता है। एक हजार किलोग्राम ईधन के जलने मे वातावरण से लगभग साठ किलोग्राम सल्फर डाईऑक्साइड छोडा जाता है। इस तरह हजारो किलो प्रदूषक आज वातावरण मे छोडा जा रहा है। अकेला अमेरिका ही दो सौ मिलियन टन प्रदूपक हवा मे छोडता है। उसमे सौ मिलियन टन कार्वन मोनोऑक्साइड रहता है। २८ मिलियन टन सीसा तथा अनेक प्रकार के फाईवर रहते है। ३२ मिलियन टन सल्फर ऑक्साइड तथा इतना ही हाइड्रो कार्वन तथा अन्य विपैले पदार्थ रहते है।

ऐसा कहा जाता है कि सतत के कोलाहल से होनेवाला ध्वनि-प्रदूपण मनुष्य के लिए मृत्यु का एक छोटा एजेट है तथा वायु-प्रदूपण वडा एजेट।

४० से ६० प्रतिशत हवा का प्रदूपण अकेले स्वचलित वाहनो से निकलने वाले दूपित पदार्थो से होता है। शेप प्रदूपण कोयला जलानेवाले कारखानो से निकलने वाली गंधकीय भाप, दावानल तथा अन्य खुदरा ईंधन के जलने से होते है। कार्वन डाईऑक्साइड की तरह कई अन्य गैसे जैसे कार्वन मोनोऑक्साइड, जो वायुमडल मे ०.१ पी० पी० एम० होती है, मगर कारो, ट्रको एवं इजिन आदि से निकलनेवाले धुए से इसकी सान्द्रता १५० से ३५० पी० पी० एम० तक भी पहुच जाती है। यह श्वसन-क्रिया द्वारा शरीर मे पहुचकर रक्त की लाल रुधिर कणिकाओ की ऑक्सीजन-परिसचरण-क्षमता कम कर देती है, जिससे मनुष्य की मृत्यु भी हो सकती है। इसकी १०० पी० पी० एम० सान्द्रता होने पर हमे चक्कर, सिरदर्द व घवराहट अनुभव होती है तथा करीव १००० पी० पी० एम० पर मृत्यु।

ईधनो के जलने से प्राप्त होनेवाली गैसो मे नाइट्रोजन भी प्रमुख है जो कि ऑक्सीजन से संयोग कर ऑक्साइड वनाती है। इनमे प्रमुख नाइट्रोजन पर-ऑक्साइड, नाइट्रोजन डाईऑक्साइड तथा नाइट्रोजन मोनोऑक्साइड है, जिनसे खासी तथा फेफड़ो के रोग उत्पन्न होते है। ये ऑक्साइड जल के साथ अम्लीय स्थिति उत्पन्न करते है। नाइट्रोजन के ऑक्साइड का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रदूपक प्रभाव 'स्मोग' के रूप मे होता है। 'स्मोग' शब्द 'स्मोक' (धुआ) और 'फोग' (कोहरा) के मिलने से वनता है। 'स्मोग' मे जल-वाष्प और धूल के कण वायु मे स्थिर होकर घना आवरण वना देते हे जो भूमि के समीप स्तरो मे पहुच जाता है जिससे प्राणियो को भारी नुकसान होता है। सल्फर डाईऑक्साइड गैस भी कोयले एव तेल के दहन से उत्पन्न होती है। वायु मे पहुचने पर यह गैस वर्पा या नमी के साथ घुलकर पृथ्वी पर पहुचती है व गधक का अम्ल वनाती है जो कि नाक मे जलन उत्पन्न करता है तथा फेफडो को भी प्रभावित करता है।

कारखानो, मोटरकार आदि के धुओ मे कार्वन डाईऑक्साइड ही नही, धातुओ के कण, कार्वन मोनोऑक्साइड, सल्फर डाईऑक्साइड, नाइट्रस ऑक्साइड, धूल जैसे हानिकारक पदार्थ होते है। धातु-कणो मे सीसा, पारा, निकल, क्रोमियम तांवा, कैडमियम आदि धातु होते हैं। पश्चिमी जर्मनी मे हुए एक अनुसधान के अनुसार मोटरकारो द्वारा छोडे गए धुए मे व आसपास के वातावरण मे पाये जानेवाले सीसे की मात्रा मे सीधा सम्बन्ध है। सन् १९७६ के इस अध्ययन के अनुसार यह पाया गया कि व्यस्त सडको पर मोटर वाहनो का धुआ साठ प्रतिशत कम करने से ही, आसपास के वातावरण मे सीसे का स्तर भी पचास से साठ प्रतिशत गिर जाता है। एक अनुमान के अनुसार कारे लगभग ५ लाख टन सीसा प्रतिवर्ष वायुमडल मे छोडती हैं। सीसे के जहर से मानव-मस्तिष्क तन्तु नष्ट हो जाते है। निकल, क्रोमियम, मैगनीज जैसी धातुओ को सास मे लिये जाने से फेफडो की वीमारिया व कैंसर तक हो सकता है।

पारे जैसी विषाक्त धातु जो पूरे स्नायु-तत्र को नष्ट करने की क्षमता रखती है—उसका प्रसार भारत जैसे विकासशील राष्ट्रो मे भी वढता जा रहा है। एक राष्ट्रीय अध्ययन के अनुसार भारत के वायुमडल मे भी हर वर्ष १८० टन पारा डाला जा रहा है। इसमे से १६६ टन पारा केवल कास्टिक सोडा पैदा करनेवाले कारखानो द्वारा ही वायुमडल मे छोडा जा रहा है।

चिकित्साशास्त्र की दृष्टि से यह सिद्ध हो चुका है कि दमा, कफ-वृद्धि आदि फेफडो की वीमारियो की वायु-प्रदूषण से वृद्धि होती है। इससे आखो की रोशनी धुधली होती है। फेफडो का कैसर तथा रक्तवाहिनी व धमनियो मे कडापन आना भी हवा की प्रदूषिता से सभाव्य है। इससे पुरानी वीमारियो मे तो वृद्धि होती ही है, पर अमेरिकन पव्लिक हेल्थ एसोसिएशन के अध्ययन के अनुसार यह स्पष्ट हो चुका है कि ऐसे वातावरण मे पाच लाख वच्चो को दमा का असर दुगुना दिखाई दिया है तथा त्वचा-रोग का प्रमाण चार गुना ज्यादा दिखाई दिया है।

वायु-प्रदूषण

कलकत्ता के वैज्ञानिक श्री टी० एम० दास ने कहा है कि वायुमडलीय प्रदूषण मानव के लिए ही नही, वनस्पति के लिए भी हानिकर है। वायु मे तैरते कण सूर्य के प्रकाश का अवदूषण करते है जो पौधो के फोटोसिन्थेसिस के लिए अत्यन्त आवश्यक है। इसका प्रभाव उत्पादन पर पडता है। प्रदूषण वाले पदार्थ जब पत्तियो पर इकट्ठे हो जाते हैं तो वे सूर्य के विकिरण को पौधो के अन्दर प्रवेश नही करने देते। इससे वे सूर्य की किरणो को अपने आहार के रूप मे अच्छी तरह से परिवर्तित नही कर पाते।

अपनी मान्यता के प्रमाण मे उन्होने पचास वर्षो के मौसम सम्बन्धी आकड़े प्रस्तुत किये है। गोरखपुर विश्वविद्यालय मे आयोजित साइस-टेक्नालॉजी तथा इकोसिस्टम सम्बन्धी गोष्ठी के मुख्य अतिथि तथा विख्यात विष-विज्ञानवेत्ता श्री एस० एस० जैदी ने कहा—'सरकार और जनता को वातावरण मे आ रही खरावी के प्रति सजग हो जाना चाहिए। यदि तत्काल ऐसा नही किया गया तो वातावरण मे उत्पन्न विकार पर नियन्त्रण पा सकना कठिन हो जायेगा।'

एक व्यक्ति पूरे-साल मे जितनी ऑक्सीजन का उपयोग करता है, उतनी ही ऑक्सीजन एक टन कोयला जलने मे नष्ट हो जाती है। इतनी ही ऑक्सीजन एक मोटरगाडी एक हजार किलोमीटर दौडकर खत्म कर देती है। एक हवाई जहाज करीव दो हजार किलोमीटर यात्रा मे करीव १०० टन ऑक्सीजन खर्च करता है।

यदि औद्योगिक इकाइयो मे कोयले का जलाया जाना वर्तमान ढग से जारी रहा और उचित प्रदूषण नियन्त्रण उपाय नही अपनाये गए तो भारत मे दस वर्ष मे तेजावी वर्षा होने लगेगी। आज उद्योगो मे ८.४० करोड टन कोयले की खपत है जो २००० ई० मे १८ करोड हो जायेगी। इसके अलावा ताप-विजलीघरो मे ६ करोड टन से वढकर १९.५० करोड़ टन हो जायेगी। यह जानकारी पर्यावरण उपमत्री श्री दिग्विजयसिंह ने ससद मे प्रस्तुत की।

वायुमडल मे जो कुछ प्रदूषण होता है उसमे से कुछ अश वरसात के माध्यम से जमीन पर नदी-नालो मे भी पहुच जाता है। जमीन व पानी पर प्रदूषण का एक नया व खतरनाक चक्र प्रारम्भ हो जाता है। कुछ पेड-पौधे, अनाज जैसे गेहू, चावल आदि प्रदूषित जमीन से विषैले तत्त्व, धातु आदि आत्मसात कर लेते है जो भोजन के रूप मे आदमी के शरीर मे पहुंच जाते है। चरते हुए दुधारू जानवरो मे भी घास के साथ प्रदूषण पहुच जाता है।

श्री जैदी ने पालिमरो एव एसवेस्टोस धातु से नदियो के जल और वायु-प्रदूषण के खतरो से उभरती समस्याओ की ओर वैज्ञानिको का ध्यान आकृष्ट किया।

यूरोप और चीन के औद्योगिक केन्द्रो का धुआ और धूल सभवत अलास्का, ग्रीनलैड और आर्कटिक महासागर पर वसंत ऋतु मे छाये रहस्यपूर्ण कुहासे का कारण है। इस निश्चय पर वैज्ञानिक लोग वहा के वायुमडल से लिये गए नमूनो के अध्ययन के वाद पहुचे है। उन लोगो की रिपोर्ट के अनुसार वहा की हवा मे ८० से ८५ प्रतिशत कण सल्फेट के है जो उच्च सल्फरयुक्त ईधन के भस्म करने से प्राप्त हुए है। उसमे रेडियम का भी कुछ अश है जो सम्भवत. उद्योगो से उपलब्ध हुआ है। उसमे कुछ सिलिकेट भी है जो चीन और मगोलिया के गोवी

रेगिस्तान से आया है।

जलवायु-विशेषज्ञो के विश्व-सम्मेलन मे यह बात इस दृष्टि से प्रस्तुत की जा रही है कि किस प्रकार एक देश के क्रियाकलाप उस देश की सीमा को लाघकर अन्य देशो को भी प्रभावित करते है। वास्तव मे सारी दुनिया एक सास्कृतिक व्यवस्था के अधीन जी रही है। कोई भी देश या व्यक्ति उसमे अवरोध करता है तो वह केवल उस तक ही सीमित नही रहता है, अपितु समस्त दुनिया को प्रभावित करता है।

जापान मे जिक के कारखानो मे काम करनेवाले श्रमिको की मृत्यूपरात शव-परीक्षा करने पर पता चला है कि कारखानो मे प्रदूषित वातावरण मे काम करने के कारण उनके मूत्राशय मे काफी प्रमाण मे केडमियम इकट्ठा हो गया था, वही उनकी मृत्यु का कारण बना।

वास्तव मे ये उदाहरण तो बहुत थोडे है, ऐसे अनेक प्रमाण इकट्ठे किये जा सकते है जिससे वायु-प्रदूषण से होनेवाली भयकर हानि का पर्दाफाश होता है। ऐसी स्थिति मे अग्नि के प्रसग मे आचरण सूत्र १-६६ मे उल्लेखित इस छोटे-से पाठ का अपना कितना महत्त्व है, जरा इसे देखे—'जे लोग अब्भाईक्खई से अत्ताण अब्भाईक्खई'—जो (अग्निकाय) लोक के अस्तित्व को अस्वीकार करता है वह अपनी आत्मा को अस्वीकार करता है। वास्तव मे अग्नि के जीवो को पीड़ित करना अपने आपको ही उत्पीडित करना है। इसीलिए आगे कहा गया है—जे दीह लोग सत्यस्स खेयण्णे, से असत्यस्स खेयण्णे। जे असत्यस्स खेयण्णे, से दीह लोग सत्यस्स खेयण्णे—आचा० १-६७। अर्थात् जो अग्निशास्त्र के स्वरूप को जानता है वह स्वय को जानता है। जो स्वय को जानता है वह अग्निशास्त्र के स्वरूप को जानता है। निश्चय ही अग्निकाय की इस विनाशलीला को समझने वाले व्यक्ति मे अपने आप सयम प्रतिफलित हो जाता है। जिसमे सयम प्रतिफलित नहीं होता है वह वास्तव मे इस विनाशलीला को जानते हुए भी अनजान है।

यद्यपि आज प्रदूषण सभी जगह अपने पाव फैलाने लगा है पर भारत मे यह अभी तक उतना नही फैला है जितना अमेरिका, जापान आदि देशो मे। एन० ई० एफ० आर० आई० के डायरेक्टर जे० एम० दवे की रिपोर्ट के अनुसार भारत के नौ शहर इस दिशा मे तेजी से बढ रहे है। इसका प्रभाव शहरो के लोगो को तो भोगना ही पडता है, पर जाने-अनजाने शेष लोग भी इसके चगुल मे फसते ही है। फिर भी यहा का वातावरण अभी तक बहुत ज्यादा प्रदूषित नही हुआ है। इसका कारण—मीमासा करते हुए विशिष्ट आहार-विशेषज्ञ डॉ० के० बी० पालने कहते है—'सत-महात्माओ की शिक्षा के कारण भारत के लोग निजी भोगवृत्ति मे नही पलते है। इसीलिए भारतीयो के शरीर, मन और आत्माओ मे एक अतुलनीय सन्तुलन दृष्टिगोचर होता है।'

हो सकता है कुछ लोगो को इस कथन मे पिछड़ेपन की गध आती हो, पर उन्हे इस समाचार पर भी ध्यान देना चाहिए कि जापान के बड़े-बड़े नगरो मे यातायात को नियोजन करनेवाले पुलिसमैन को आधा-आधा घटा बाद पास मे रहे ऑक्सीजन की थैली से ऑक्सीजन लेना पडता हे। यातायात के कारण वहा इतना प्रदूषण पैदा हो गया कि कई जगहो पर तो बच्चो को स्कूल जाते समय गैस-मास्क पहनना पडता है। वहा इस प्रदूषण को रोकने के लिए सप्ताह मे एक दिन पेट्रोल से चलनेवाले यातायात को बद रखा जाता है।

हवा के प्रदूषण से बड़े-बड़े ऐतिहासिक भवनो को क्षति पहुचती है। इसलिए मथुरा में स्थापित होनेवाली रिफाइनरी से ताजमहल को लेकर एक विवाद भारत मे खडा हो रहा है। इमसे फ़सल का नुकसान भी निश्चित है। वैज्ञानिक शोधो से यह नि सदेह प्रमाणित हो गया है कि हवा मे तैरनेवाले धूलकणो से आच्छादित औद्योगिक क्षेत्र वाले शहरो मे अन्य क्षेत्रो की अपेक्षा वर्षा ज्यादा होती है। हवा मे तैरनेवाले धूलकणो से सूर्य की किरणो की गति बदल जाती है। इससे जमीन को प्राप्त होनेवाली ऊर्जा मे भी अन्तर आ रहा है। पृथ्वी का तापमान १ ५ डि० सेटिग्रेड से बढ गया तो उससे ध्रुव प्रदेशो की बर्फ पिघलने लगेगी। उससे समुद्र के पानी का स्तर सात फीट ऊचा हो सकता है और पृथ्वी का बडा हिस्सा उसमे डूब सकता है। वायु-प्रदूषण से अकेले अमेरिका को प्रतिवर्ष १६ अरब डालर का नुकसान होता है।

आधुनिकीकरण की होड मे बढते हुए धूलकणो के कारण भी विश्वस्तर पर तापक्रम मे अन्तर आया है। बढते हुए धूलकणो से सूर्य का प्रकाश, सूर्य की ऊर्जा परावर्तित हो जाती है, बिखर जाती है, जिससे पृथ्वी ठडी होती जा रही है। सन् १८८० से १९४० के बीच पृथ्वी के औसत तापक्रम मे लगभग ०.७ फारेनहाइट की बढोतरी हुई थी किन्तु सन् १९४० से वातावरण मे कार्बन डाईऑक्साइड के बढने पर भी कमी आयी है और सन् १९६० तक पृथ्वी अपने आरम्भिक ताप बढोतरी के ३० प्रतिशत कमी पर पहुच गयी है। इसका मुख्य कारण वायुमडल मे धूलकणो की वृद्धि माना जा सकता है।

औद्योगीकरण के नाम पर आज उद्योग-धधो का अधाधुध विकास होता जा रहा है। इससे जो प्राकृतिक असतुलन पैदा होता जा रहा है वह भी एक गहरी चिन्ता का विषय हे। पेट्रोल की राजनीति और अर्थनीति ने तो दुनिया मे एक असतुलन पैदा किया पर इससे जो प्राकृतिक असतुलन पैदा हो रहा है वह बहुत ही खतरनाक है। आगे चलकर यह खतरा केवल औद्योगिक क्षेत्रो पर प्रगत देशो तक ही सीमित रह जाने वाला नही हे अपितु इससे समुचित जीवन-सृष्टि को ही क्षति पहुच सकती है। इस दृष्टि से सौरशक्ति का उपयोग एक नयी आशा की किरण है। इसके उपयोग मे सम्भवत प्राचीन प्रदूषण से बचा जा सके पर यदि

उद्योग-धधो को चलाने के लिए इसका अतिशय उपयोग किया गया तो न जाने प्राकृतिक सतुलन पर कैसा प्रभाव पडने वाला है ?

धूम्रपान . आत्महत्या या परहत्या

धूम्रपान से तैजस्काय की हिंसा तथा वायु-प्रदूषण तो होता ही है पर इससे भी आगे यह सोचना जरूरी है कि यह केवल पर-हिंसा ही है या आत्महत्या भी है ? यद्यपि धूम्रपान करने वालो को आत्महत्या के अपराध मे वन्दी नही वनाया जा सकता पर 'ब्रिटिश मेडिकल सर्जन्स', २५ अगस्त, १९७४ की रिपोर्ट से पता चलता है कि वहा के अस्पतालो की आठ हजार चारपाइया सिगरेट के हानिकारक प्रभाव वाले रोगियो से भरी पडी है। उन पर ढाई करोड पौड का वार्षिक व्यय आ रहा है। वहा १९७४ मे ३७००० व्यक्ति इस रोग के कारण मृत्युशैया पर सो गये। अमेरिका मे १९६२ मे ४१००० लोगो की धूम्रपान के कारण मृत्यु हुई।

वैज्ञानिक विश्लेषण से पता चलता है कि तम्वाकू मे चार पदार्थ मानव के लिए विष का काम करते है—(१) निकोटीन (२) कोल्टा, (३) आर्सेनिक, (४) कार्वन मोनो-ऑक्साइड। इनसे मानव शरीर पर धीमी मृत्यु की-सी प्रतिक्रिया होती है। निकोटीन के प्रभाव से व्यक्ति मे चिडचिडापन आता है। आखो मे रक्ताभिसरण कम हो जाने से दृष्टि कमजोर हो जाती है। हृदय की धडकन तथा रक्तचाप वढ जाता है। अधेड़ लोगो की हृदयगति वद होने तक की आशका वनी रहती है। त्वचा का रक्तस्राव ४ अश फारेनहाइट तक कम हो जाता है। शिराये सकुचित हो जाती है। अत. हृदय की खून की सप्लाई मे कमी आ जाती है। भूख मिट जाती है। आमाशय की आते उत्तेजित हो जाती है, उनका रक्तप्रवाह धीमा पड़ जाता है। खून मे लाल कणो की कमी आ जाने से उसकी ऑक्सीजन वहन करने की शक्ति घट जाती है, परिणामत. सास फूलने लगता है। गले की नली मे तथा पुरुषो के मूत्राशय और जीभ मे कैसर हो जाता है। हृदय की कोई धमनी की वीमारी से मृत्यु तक हो सकती है।

१९६२ मे प्रो॰ लूथर एस॰ टेरी की अध्यक्षता मे गठित डॉक्टरो तथा प्रोफेसरो की एक समिति ने चौदह महीनो के वैज्ञानिक अन्वेषण के वाद अपना निष्कर्ष प्रस्तुत करते हुए कहा था—सिगरेट पीने वाले पुरुषो की मृत्यु-सख्या ७० प्रतिशत पायी गयी है। श्री लूथर ने विशेष रूप से लिखा है—मै विश्वासपूर्वक कह सकता हू कि धूम्रपान से मनुष्यो की मृत्यु का सकट वढता जा रहा है, इसलिए इसे रोकने के लिए सरकारी स्वास्थ्य विभाग को ठोस कदम उठाना चाहिए।

अमेरिका के एक डॉक्टर ने वताया है—कैसर से मरने वालो मे सिगरेट पीने वालो की सख्या सिगरेट न पीने वालो की सख्या से २७ गुणा अधिक थी।

हो सकता है कुछ लोगो को इस कथन मे पिछडेपन की गध आती हो, पर उन्हे इस समाचार पर भी ध्यान देना चाहिए कि जापान के बड़े-बडे नगरो मे यातायात को नियोजन करनेवाले पुलिसमैन को आधा-आधा घटा बाद पास मे रहे ऑक्सीजन की थैली से ऑक्सीजन लेना पडता है। यातायात के कारण वहा इतना प्रदूषण पैदा हो गया कि कई जगहो पर तो बच्चो को स्कूल जाते समय गैस-मास्क पहनना पडता है। वहा इस प्रदूपण को रोकने के लिए सप्ताह मे एक दिन पेट्रोल से चलनेवाले यातायात को बद रखा जाता है।

हवा के प्रदूपण से बडे-बड़े ऐतिहासिक भवनो को क्षति पहुचती है। इसलिए मथुरा मे स्थापित होनेवाली रिफाइनरी से ताजमहल को लेकर एक विवाद भारत मे खडा हो रहा है। इससे फ़सल का नुकसान भी निश्चित है। वैज्ञानिक शोधो से यह नि.सदेह प्रमाणित हो गया है कि हवा मे तैरनेवाले धूलकणो से आच्छादित औद्योगिक क्षेत्र वाले शहरो मे अन्य क्षेत्रो की अपेक्षा वर्पा ज्यादा होती है। हवा मे तैरनेवाले धूलकणो से सूर्य की किरणो की गति वदल जाती है। इससे जमीन को प्राप्त होनेवाली ऊर्जा मे भी अन्तर आ रहा है। पृथ्वी का तापमान १.५ डि० सेंटिग्रेड से वढ गया तो उससे ध्रुव प्रदेशो की वर्फ पिघलने लगेगी। उससे समुद्र के पानी का स्तर सात फीट ऊचा हो सकता है और पृथ्वी का वडा हिस्सा उसमे डूब सकता है। वायु-प्रदूपण से अकेले अमेरिका को प्रतिवर्ष १६ अरव डालर का नुकसान होता है।

आधुनिकीकरण की होड़ मे वढते हुए धूलकणो के कारण भी विश्वस्तर पर तापक्रम मे अन्तर आया है। बढते हुए धूलकणो से सूर्य का प्रकाश, सूर्य की ऊर्जा परावर्तित हो जाती है, विखर जाती है, जिससे पृथ्वी ठडी होती जा रही है। सन् १८८० से १९४० के वीच पृथ्वी के औसत तापक्रम मे लगभग ०.७ फारेनहाइट की वढोतरी हुई थी किन्तु सन् १९४० से वातावरण मे कार्वन डाईऑक्साइड के वढने पर भी कमी आयी है और सन् १९६० तक पृथ्वी अपने आरम्भिक ताप वढोतरी के ३० प्रतिशत कमी पर पहुच गयी है। इसका मुख्य कारण वायुमडल मे धूलकणो की वृद्धि माना जा सकता है।

औद्योगीकरण के नाम पर आज उद्योग-धधो का अधाधुध विकास होता जा रहा है। इससे जो प्राकृतिक असतुलन पैदा होता जा रहा है वह भी एक गहरी चिन्ता का विपय है। पेट्रोल की राजनीति और अर्थनीति ने तो दुनिया मे एक असतुलन पैदा किया पर इससे जो प्राकृतिक असतुलन पैदा हो रहा है वह वहुत ही खतरनाक है। आगे चलकर यह खतरा केवल औद्योगिक क्षेत्रो पर प्रगत देशो तक ही सीमित रह जाने वाला नही है अपितु इससे समुचित जीवन-सृष्टि को ही क्षति पहुच सकती है। इस दृष्टि से सौरशक्ति का उपयोग एक नयी आशा की किरण है। इसके उपयोग मे सम्भवत प्राचीन प्रदूपण से वचा जा सके पर यदि

उद्योग-धधो को चलाने के लिए इसका अतिशय उपयोग किया गया तो न जाने प्राकृतिक सतुलन पर कैसा प्रभाव पडने वाला है ?

धूम्रपान : आत्महत्या या परहत्या

धूम्रपान से तैजस्काय की हिंसा तथा वायु-प्रदूषण तो होता ही है पर इससे भी आगे यह सोचना जरूरी है कि यह केवल पर-हिंसा ही है या आत्महत्या भी है ? यद्यपि धूम्रपान करने वालो को आत्महत्या के अपराध मे बन्दी नही बनाया जा सकता पर 'ब्रिटिश मेडिकल सर्जन्स', २५ अगस्त, १६७४ की रिपोर्ट से पता चलता है कि वहा के अस्पतालो की आठ हजार चारपाइया सिगरेट के हानिकारक प्रभाव वाले रोगियो से भरी पडी है। उन पर ढाई करोड पौड का वार्षिक व्यय आ रहा है। वहा १६७४ मे ३७००० व्यक्ति इस रोग के कारण मृत्युशैया पर सो गये। अमेरिका मे १६६२ मे ४१००० लोगो की धूम्रपान के कारण मृत्यु हुई।

वैज्ञानिक विश्लेषण से पता चलता है कि तम्बाकू मे चार पदार्थ मानव के लिए विष का काम करते है—(१) निकोटीन (२) कोल्टा, (३) आर्सेनिक, (४) कार्बन मोनो-ऑक्साइड। इनसे मानव शरीर पर धीमी मृत्यु की-सी प्रतिक्रिया होती है। निकोटीन के प्रभाव से व्यक्ति मे चिडचिडापन आता है। आखो मे रक्ताभिसरण कम हो जाने से दृष्टि कमजोर हो जाती है। हृदय की धडकन तथा रक्तचाप बढ जाता है। अधेड लोगो की हृदयगति बद होने तक की आशका बनी रहती है। त्वचा का रक्तस्राव ४ अश फारेनहाइट तक कम हो जाता है। शिराये सकुचित हो जाती है। अत हृदय की खून की सप्लाई मे कमी आ जाती है। भूख मिट जाती है। आमाशय की आते उत्तेजित हो जाती है, उनका रक्तप्रवाह धीमा पड जाता है। खून मे लाल कणो की कमी आ जाने से उसकी ऑक्सीजन वहन करने की शक्ति घट जाती है, परिणामत. सास फूलने लगता है। गले की नली मे तथा पुरुषो के मूत्राशय और जीभ मे कैसर हो जाता है। हृदय की कोई धमनी की बीमारी से मृत्यु तक हो सकती है।

१६६२ मे प्रो० लूथर एस० टेरी की अध्यक्षता मे गठित डॉक्टरो तथा प्रोफेसरों की एक समिति ने चौदह महीनो के वैज्ञानिक अन्वेषण के बाद अपना निष्कर्ष प्रस्तुत करते हुए कहा था—सिगरेट पीने वाले पुरुषो की मृत्यु-सख्या ७० प्रतिशत पायी गयी है। श्री लूथर ने विशेष रूप से लिखा है—मैं विश्वासपूर्वक कह सकता हू कि धूम्रपान से मनुष्यो की मृत्यु का सकट बढता जा रहा है, इसलिए इसे रोकने के लिए सरकारी स्वास्थ्य विभाग को ठोस कदम उठाना चाहिए।

अमेरिका के एक डॉक्टर ने बताया है—कैसर से मरने वालो मे सिगरेट पीने वालो की सख्या सिगरेट न पीने वालो की सख्या से २७ गुणा अधिक थी।

इंग्लैड के रॉयल कॉलेज के चिकित्सको की एक विशेष समिति ने आंकड़े देकर वताया है कि वाकाइस्ट, पेट मे फोडा, फेफडो मे घाव, हृदय की धडकन आदि वहुत सारे रोग धूम्रपान से हो सकते है। उन्होने वताया है—

१ यह अनुमान है कि ब्रिटेन मे पैंतीस से चौसठ वर्ष के वीस हजार व्यक्ति हर वर्ष धूम्रपान से मरते है।

२ पैंतीस वर्ष तक आनुपातिक धूम्रपान करने वाला व्यक्ति एक धूम्रपान नही करने वाले व्यक्ति की अपेक्षा अपने जीवन मे साढे पाच वर्ष ज्यादा गवा देता है।

३ यदि धूम्रपान की यही आदत चलती रही तो १६८० मे ब्रिटेन मे पचास हजार व्यक्ति अकेले फेफडे के कैसर से मर जायेगे।

४ धूम्रपान की वीमारी से ब्रिटेन के कारखानो मे पचास करोड का नुकसान हो रहा है।

अमेरिका के सुप्रसिद्ध नेत्र-चिकित्सक डॉ० एच० एस० के अनुसार धूम्रपान से आखे कमजोर हो जाती है।

वोस्टन से प्रसारित एसोसिएटेड प्रेस के समाचार मे कहा गया है कि सिगरेट पीने से एक ऐसा रोग होता है जिसके फलस्वरूप रक्त मे ऑक्सीजन की मात्रा घट जाती है। उससे व्यक्ति सिरदर्द, थकान, मूर्च्छा आदि का शिकार वन जाता है। फलस्वरूप दिल के दौरे की आशका वढ जाती है। इस रोग का नाम पोलिसिथेमिया है। इससे रक्त मे कार्वन मोनोऑक्साइड की मात्रा वढ जाती है तथा ऑक्सीजन की आपूर्ति मे कमी हो जाती है। जो भी सिगरेट पीता है वह इस रोग का शिकार होता ही है। भले ही कुछ लोगो को कष्ट इतना कम हो कि लक्षण प्रकट न होने पाएं।

स्कॉटलैण्ड धूम्रपान विरोधी सगठन मे आयुर्विज्ञान निदेशक, विश्व स्वास्थ्य सगठन के धूम्रपान नियत्रण की विशेषज्ञ समिति की सदस्य लेडी एलिन क्राप्ट्ज के अनुसार सिगरेट पीना फेफडो के कैसर का मुख्य कारण है। इसके अलावा श्वसनीय शोध, व्राकाइक्स, वालस्फिती, एक्जिमा जैसी अनेक असाध्य वीमारिया भी धूम्रपान से हो सकती है।

दिल्ली-स्थित आजाद मेडिकल कॉलिज के अपने व्याख्यान मे लेडी क्राप्ट्ज ने वताया कि सिगरेट पीने वालो को पैंसठ वर्ष की अवस्था के पहले मौत का शिकार होने की दुगुनी आशका रहती है। उन्होने यह भी वताया कि ब्रिटेन के कार्यालयो मे सिगरेट न पीने वालो की अपेक्षा पीनेवालो की अनुपस्थिति दुगुनी रहती है। अधेट उम्र मे दिल का दौरा पडने से खासकर अचानक मृत्यु का प्रमुख कारण सिगरेट पीना है।

भारतीय दमा और श्वसनीय शोध फाउण्डेशन के अन्तर्गत आयोजित

व्याख्यान-माला मे उन्होने कहा—"यदि माता या पिता अथवा दोनो ही धूम्रपान करते है तो उनके एक वर्ष तक की उम्र के बच्चे की छाती मे गभीर रोग होने की सभावना रहती है। ऐसी भी सम्भावना है कि सिगरेट पीनेवाली महिलाओ के मृत बच्चा पैदा हो या होने के वाद शीघ्र ही उसकी मृत्यु हो जाय।"

जिनेवा के विशेषज्ञो के एक दल ने सिगरेट से महिलाओ पर पडने वाले दुष्प्रभाव पर प्रकाश डालते हुए कहा है—"धूम्रपान करने वाली माताओ के गर्भपात की तथा जल्दी रजस्राव वन्द होने की आशका अधिक रहती है। उनके नवजात शिशु का वजन ढाई सौ ग्राम तक कम होने की सभावना है।"

प्रो० हिचकान आदि की सम्मति है कि शराव आदि मादक द्रव्यो की अपेक्षा तम्वाकू से वुद्धि का ह्रास अधिक होता है। इसके समान इन्द्रिय-दौर्वल्य, वुद्धि तथा स्मरणशक्ति की हानि, चित्त की चचलता और मस्तिष्क का रोग पैदा करने वाली दूसरी कोई वस्तु नही है। मादक पदार्थ वृहस्पति के समान असाधारण मनुष्य को भी वुद्धि भ्रष्ट कर उसे अपना दास वनाकर नचाते है, यह तो हम प्रत्यक्ष ही देखते है।

तम्वाकू से होने वाली हानि को दृष्टिगत करते हुए प्रत्येक चिकित्सा-पद्धति इसका निषेध करती है। डॉ० फोवर्स विसला पागलपन सम्वन्धी रोगो के विशेषज्ञ माने गए है। उन्होने हजारो पागलो के निरीक्षण और उपचार के उपरात अपने निष्कर्ष मे वताया है—"यदि मुझसे पूछा जाय तो मै पागलपन के कारणो को इस क्रम से रखूगा—पहला मद्य, दूसरा तम्वाकू और तीसरा आनुवशिकता।'

अमेरिकन वनस्पति-विज्ञान के विशेषज्ञ लूथर पक जडी-वूटियो के सम्वन्ध मे जगत मे प्रसिद्ध एव प्रामाणिक विद्वान माने जाते है। उन्होने अपने एक लेख मे लिखा है—"मै यह सिद्ध कर सकता हू कि जिन कार्यो मे एकाग्रता की आवश्यकता होती है उनमे नशीले पदार्थो का व्यवहार अवश्य ही हानिकारक सिद्ध हुआ है।"

डॉ० आर० के० राय ने अपने एक निवध मे लिखा है—धूम्रपान आधुनिक जीवन मे सभ्यता का एक रूप माना जाता है। कुछ लोग धूम्रपान केवल आधुनिक वनने के लिए करते हैं। सामान्य तौर पर यह देखा गया है कि नवयुवक एक-दूसरे का अनुकरण करते हुए धूम्रपान के शिकार हो जाते है। लडकिया एव महिलाए भी इसमे पीछे नही है। अमेरिका मे दस वर्ष की अवस्था मे धूम्रपान करने वालो की सख्या तीन गुनी हो गई है। कुछ लोग इसका उपयोग मानसिक शान्ति, उत्तेजना एव नशे के रूप मे करते है। भारतवर्ष मे ही नही वल्कि विश्व भर मे तम्वाकू (सुर्ती), चूना सुर्ती (खैनी), सुघनी (नेजल स्नफ), जर्दा (पान के साथ), वीडी-सिगरेट, हुक्का सिगार (पाइप) मौजूद है।

कुछ लोग धूम्रपान इस कदर करते हैं कि एक सिगरेट वुझने नही पाती कि

दूसरी जला ली जाती है। ऐसे लोगो को 'चेन स्मोकर' कहा जाता है। सामान्यं तौर पर लोग कह देते हैं कि धुआ अन्दर जाता है, फिर वाहर निकल जाता है। इससे उत्तेजना एव मानसिक शान्ति मिलती है। नुकसान क्या है? लेकिन ऐसे अधविश्वासी लोगो को यह मालूम नही कि तम्बाकू मे पाया जाने वाला एक विषाक्त प्रोटीन जिसे निकोटीन कहते है, शरीर के विभिन्न अगो पर अपना कुप्रभाव छोड़ता है। फेफड़े के अन्दर इस प्रकार परिवर्तन कर देता है कि कैसर जैसे विनाशकारी रोग की सम्भावना दो से तीन गुना हो जाती है।

धुआं हानिप्रद

कुछ लोगो का भ्रम है कि फिल्टर्ड धूम्रपान हानिप्रद नही होता है। लेकिन यह वात गलत है। वीडी, सिगरेट, हुक्का, पाइप चाहे किसी प्रकार का धूम्रपान हो, उसका कुप्रभाव शरीर पर अवश्य पड जाता है। जव धूम्रपान किया जाता है तो धुए का तापक्रम लगभग ८८° से० ग्रे०´ का उत्पन्न होता है। यह तापक्रम तम्वाकू मे उपस्थित कार्वनिक-अकार्वनिक यौगिको के ऑक्सीकरण भजन एव सघनन से उत्पन्न होता है। इन क्रियाओ से एल्कल्वायड, एलडिहाइड, एरोमेटिक क्टिोन ग्लिसराल, एरोमेटिक हाइड्रो कार्वन आदि वनते हैं जो रक्त मे शोषित होकर उनको दूषित वना देते है तथा रक्त-सचार के समय विभिन्न अगो मे पहुच-कर उनके क्रियाकलापो को अनियमित कर देते है। जव ये दूषित पदार्थ रक्त से गुर्दे के द्वारा छनते हैं और मूत्र मे जाते हैं तो गुर्दे के साथ-साथ मूत्राशय एव मूत्र नली को भी प्रभावित करते है तथा कैसर या पथरी जैसे रोग उत्पन्न कर देते है।

धुए मे कई प्रकार के रेडियोधर्मी अवयव भी होते हैं, जिनमे पोलोनियम २१० मुख्य है। साथ-साथ धुए के अन्दर उपस्थित कार्वन कण जव मुख से होकर श्वास-नली और फेफडो मे पहुचते हैं तो श्वास नली मे उपस्थित सिलिपा (वाल जैसी रचना जो श्वास नली को साफ करने का काम करती है) को नष्ट कर देती है। इतना ही नही, उसमे उत्पन्न श्लेष्म तथा म्यूकस कोशिकाओ को भी नष्ट कर देते है जिससे उनकी सुरक्षा व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो जाती है। इससे श्वास-नली तथा फेफडो मे सूक्ष्म जीवो (वैक्टीरिया-वायरस) का प्रकोप वढ जाता है। इससे फेफड़ो मे फैरिंजाइटिस, लैरिंजाइटिस, व्राकाइटिस, न्यूमोनाइटिस, फेफड़े के क्षय रोग का भयंकर रूप धारण कर लेते हैं।

श्वास-नली एव फेफडो मे कैसर केवल उन्ही लोगो मे होता है जो लोग धूम्रपान करते है। इसका मुख्य कारण धुए मे उपस्थित कार्वन कण, रेडियोधर्मी अवयव तथा एक विशिष्ट प्रकार का कैसर उत्पन्न करने वाला नाइट्रोसोनार

निकोटीन है जो कोशिकाओ की सतह पर जमा होकर उनमे प्री कैसर स्तर उत्पन्न करते है। लगातार कोशिकाओ मे डिसप्लेजिया, मेराप्लेजिया, ल्यूको-प्लेटिया, कारसीनोमा इन सिट (प्री कैसरस स्टेज, स्टेज जीरो कैसर) के कारण ओरो फॅरिजियल कैसर, लेरिंजियल कैसर, वाकोजेनिक कारसिनोमा जैसे भयकर मालिगनेसी (कैसर) उत्पन्न करते है।

धूम्रपान करने से श्वास नली एव फेफडो का कैसर ही नही वल्कि शरीर मे किसी भी अग का कैसर उत्पन्न हो सकता है।

धूम्रपान आटोनोमिक नर्व्स सिस्टम की कार्यप्रणाली को केटा केलामिन की सरचना को बदलकर (सिंथेसिस एण्ड रिलीज आर डिस्टर्व) जिससे पेट सवधी विकार, भूख की अनियमितता (कभी ज्यादा कभी कम या भूख नही लगना), पेट मे जलन (गैसट्राईरिस), कच्ची डकार (डिसपेपसिया),अम्लता तथा पेट मे छाला आ जाना, घाव वन जाना (अलमर), पेट का कैसर आदि रोग उत्पन्न करता है।

धूम्रपान से रक्त सचारित अगो मे अनियमितताए आ जाती है। हृदय की कार्यप्रणाली वदल जाती है। हृदय कमजोर हो जाता है। स्पदन गति वढ जाती है जिस कारण कार्डियल इफेक्शन, हार्टफेल्वोर, पेलपिटेशन (दिल धड़कना) इत्यादि रोग हो जाते है। रक्त-सचार मे ये खून की नलियो को सकरा कर देते है जिससे रक्त-चाप वढ जाता है और हायरटैशन नामक वीमारी हो जाती हैं। साथ ही साथ पेरिफेरल वैसकुलर डिसीज जैसे वहुत खतरनाक रोग हो जाते है।

धूम्रपान से मस्तिष्क पर भी कुप्रभाव पडता है। विभिन्न प्रकार की मानसिक वीमारिया इससे पनपती है और वढती है जैसे साइको सोमेटिक वीमारी।

इस दृष्टि से ये आकड़े भी पठनीय है—

१. धूम्रपान करने से प्रति ७० हजार लोगो की मृत्यु होती है।

२. धूम्रपान से मरने वालो की सख्या सडक-दुर्घटनाओ मे मरने वालो की अपेक्षा पाच गुना अधिक है।

३. फेफडो मे कैसर से पीड़ित प्रत्येक १० व्यक्तियो मे से ६ व्यक्ति धूम्रपान करने वाले होते है।

४. प्रतिदिन एक पैकेट सिगरेट पीने से औसत जीवन आयु मे ८ वर्ष की कमी हो जाती है।

५. सिगरेट, वीडी आदि मे पाया जाने वाला निकोटीन नामक विषैला पदार्थ फेफडो के कैसर के लिए उत्तरदायी है।

७. सितम्बर, १६५७ के 'स्टेट्स मैन' मे यह समाचार छपा है कि भारत मे किए गए अनुसधानो से यह ज्ञात होता है कि गालो मे होने वाले कैसर का प्रमुख कारण जीभ के नीचे रखी जाकर खाने अथवा चवाने वाली तम्बाकू है। इसी

प्रकार गले के ऊपरी भाग मे, जीभ मे तथा पीठ मे होने वाले कैसर भी बीडी पीने से होते है। उससे गले के नीचे के भाग तथा अतडियो मे भी कैंसर होता पाया गया है।

डॉ० स्टीवेन्सन ने लिखा है—तम्वाकू-सेवन से धारणा, ध्यान तथा स्मरणशक्ति कमजोर होती है।

डॉ० केनन का कथन है—मेरे अनुभव मे ऐसे कई उदाहरण है कि तम्वाकू के प्रयोग से मनुष्य वृद्धावस्था के पूर्व ही स्मरणशक्ति और ज्ञान से शून्य हो गये।

विशेपज्ञो का कहना है कि एक सिगरेट मनुष्य की चौदह मिनट आयु कम करता है।

नोवेल पुरस्कार विजेता डॉ० पोलिंग का कथन है कि मनुष्य जितना समय धूम्रपान मे लगाता है उससे तिगुना समय उसकी उम्र मे कम हो जाता है।

ऐसे उदाहरण और भी एकत्र किए जा सकते है। पर मुझे लगता है इतने उद्धरण भी काफी है। इनके आधार पर हम जान सकते है कि धूम्रपान मनुष्य के लिए कितना हानिकारक है। इसलिए अनेक देशो में सिगरेट के हर पैकेट पर यह चेतावनी छापने की व्यवस्था है—यह विष है और मानवीय स्वास्थ्य के लिए घातक है अथवा सिगरेट पीना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है—Cigarette smoking is injurious to health, पर इसके वावजूद तम्वाकू पीने वालो की संख्या दिनोदिन वढ रही है। यद्यपि यूरोपीय देशो में श्रमिक वर्ग मे धूम्रपान वढा है पर अधिक शिक्षा-प्राप्त लोगो मे इसका अनुपात घटा है।

वैसे विकसित देशो मे भी धूम्रपान की समस्या कम नही है। पर विकासशील देशो मे उसका विस्तार होना एक गम्भीर वात है। क्योकि वहा का स्वास्थ्य-स्तर विकसित देशो की अपेक्षा पहले से ही नीचा होता है। ऐसी स्थिति मे वहां सिगरेट से और अधिक हानि की सम्भावना से इनकार नही किया जा सकता। कमजोर व्यवस्था तथा वहुद्देशीय कम्पनियो के प्रचार-दवाव से वहा 'टार' वाले सिगरेटो का प्रचलन वढ रहा है, जवकि यूरोपीय देशो मे उन पर रोक है।

धूम्रपान के आर्थिक शोपण का व्योरा देते हुए वताया गया है कि सिगरेटो का पूरा व्यवसाय सात वडी कम्पनियो के हाथ है। उन सवो की १९७६ मे विक्री वत्तीस अरव डालर की थी। यह उद्योग प्रति वर्प एक अरव आठ करोड डालर अपने विज्ञापन पर खर्च करता है। इससे सहज ही पता लग सकता है कि यह उद्योग कितनी चतुराई मे पैसा कमा रहा है और गरीव देशो को शारीरिक तथा आर्थिक—दोनो दृष्टिकोण से गरीव वनाता जा रहा है।

लेडी क्राप्ट्स ने इस तथ्य पर सकेत करते हुए कहा है—सिगरेट-निर्माता अव अपना ध्यान भारत जैसे देशो की ओर अधिक केन्द्रित कर रहे है, इसीलिए यहा इसका प्रचलन वढ रहा है।

जिनेवा मे सम्पन्न एक सम्मेलन मे विशेषज्ञो ने वहु-उद्देशीय तम्बाकू कम्पनियो पर आक्रमण करते हुए इसी तथ्य का समर्थन किया है कि वे विकासशील देशो मे धूम्रपान को वढावा दे रहे है। वे जन-स्वास्थ्य की उपेक्षा कर अपनी विक्री वढाने के लिए सभी तरह के उपायो को काम मे ला रहे है।

१९५० से १९७५ के वीच सिगरेटो का उत्पादन इकतीस खरव वारह अरव वढा है। इसमे सवसे अधिक वृद्धि विकासशील देशो मे हुई है। अकेले पाकिस्तान मे सिगरेट का उत्पादन अठारह गुना वढा है। चीन मे रोग-मुक्त रहने पर वहुत वल दिया जाता है पर आज वह विश्व का सवसे वडा तम्वाकू-उत्पादक देश है। १९७५ मे वहा सिगरेटो की खपत सात खरव पचीस अरव थी जवकि अमेरिका मे उसकी खपत छह खरव पेसठ अरव थी। इस दृष्टि से भारत को देखा जाय तो यहा के लोग प्रतिदिन दो करोड़ रुपये अर्थात् सात सौ तीस करोड रुपये वार्षिक तम्वाकू मे खर्च कर देते है। यदि इस पैसे को शिक्षा-व्यवस्था मे खर्च किया जाय तो वह आसानी से सुलझ सकती है।

पर दुख की वात है कि आज वहुत सारे लोग इसे अपना वैयक्तिक मामला मानकर इन आकडो की ओर से आखे मूद लेते है। इतना ही नही वल्कि तम्वाकू पीना अपना अधिकार मानते है। धूम्रपान को अपना वैयक्तिक अधिकार मानने वालो को उत्तर देते हुए विश्व स्वास्थ्य सगठन के श्री रावर्टो मैसेरिनो ने कहा है—'धूम्रपान करने का अधिकार पडोसी के शुद्ध वायु पाने के अधिकार से वडा नही हो सकता।' अमरीका के सर्जन जनरल एवरेट कूप द्वारा प्रकाशित १९८२ की सरकारी रिपोर्ट मे धूम्रपान को सर्वाधिक वडी समस्या के रूप मे वताया गया है। श्वास प्रकोप से लेकर हृदय-रोग एव कैसर तक की जानलेवा वीमारियो का एक प्रमुख निमित्त सिगरेट है। सिगरेट केवल पीने वालो का ही नुकसान नही करती अपितु उसके धुए से धूम्रपान न करने वाले व्यक्तियो पर भी घातक प्रभाव होता है। वास्तव मे तो दुनिया के सारे मनुष्य एक ही नाव पर वैठकर अपनी जलयात्रा कर रहे है। कोई आदमी यदि उस नाव मे छेद करे तो क्या इसका परिणाम यही नही होगा कि वह स्वय तो डूवेगा ही, पर वाकी लोग भी डूवने से वच नही पायेगे। एक व्यक्ति जव धूम्रपान करता है तो उसके धुए से पडोस वाले व्यक्ति को भी नुकसान होने की सम्भावना रहती ही है।

देशरत्न डॉ० राजेन्द्रप्रसाद एक वार रेल से यात्रा कर रहे थे। एक ग्रामीण भी उसी डिव्वे मे यात्रा कर रहा था। तम्वाकू पीकर उसका धुआ डिव्वे मे छोड रहा था। श्री प्रसाद ने उसे तम्वाकू पीने से मना किया। वह उन्हे नही पहचानते हुए वोला—'मैं धूम्रपान अपने पैसे की वीडी से कर रहा हू, तुम्हे इससे क्या मतलव है?' श्री प्रसाद ने कहा—'वीडी तुम्हारी है तो यह धुआ भी

तुम्हारा है। इसको अपने कावू मे करो। तुम्हारे वीडी पीने के अधिकार का यह अर्थ नही हो सकता कि उसका धुआ दूसरो को नुकसान पहुंचाए।' हो सकता है कि उनके कहने से उस आदमी ने अपना धुआ दूसरी ओर छोड़ दिया हो। पर धुआ जिधर भी जायेगा, उधर ही वह वायु-प्रदूपण तो करेगा ही। इस दृष्टि से मनुष्य जाति ही नही अपितु ससार के सारे प्राणी एक ही नाव मे वैठकर यात्रा कर रहे है। हमारी एक की आसक्त प्रवृत्ति दूसरे को प्रभावित करती ही है। इसीलिए धूम्रपान से होने वाली तेजस्काय की हिंसा भगवान् महावीर की दृष्टि मे अपने आप निपिद्ध हो जाती है। क्या उनका यह उपदेश वातावरण को प्रदूपित होने से वचाने मे भी एक मूल्यवान भूमिका अदा नही कर सकता है?

ध्वनि-प्रदूषण और वायुकायिक हिंसा

भगवान् महावीर ने कहा—'ज सन्मति पासह त भोणति पासह' (आचा० ४-५१)। जो सत्य को जानता है वही मौन को जानता है और जो मौन को जानता है वही सत्य को जानता है। सचमुच इस उक्ति मे गहरा अर्थ भरा हुआ है। अधिकाश लोग शब्द-शक्ति को ही पहचानते है पर आज यह स्पष्ट हो गया है—शब्द या ध्वनि मनुष्य के लिए कितनी घातक हो सकती है। वोलने से मनुष्य की अपनी शक्ति तो क्षीण होती ही है पर ध्वनि का शस्त्र सरीखा प्रभाव होता है। इस स्फोटक ध्वनि से वड़े-वडे पत्थरो को तोड़ा जा सकता है, तव वेचारे कान के कोमल परदो की तो वात ही क्या है? सचमुच ध्वनि-प्रदूपण आज के युग की एक गभीर समस्या वन गया है। यातायात की खडखडाहट, विमानो का कर्णभेदी स्वर, कल-कारखानो तथा तरह-तरह की मशीनो की निरन्तर घडघडाहट, वातानुकूलित यंत्र तथा पखे-रेफ्रिजरेटर का सूक्ष्म कम्पन, रेडियो से कोलाहल, घर के वर्तन आदि वस्तुओ का सघर्पण, परस्पर का वार्तालाप, स्कूल-कॉलेज, ऑफिस, सभा-सोसायटियो, जुलूसो का गगनभेदी घोप, भिन्न-भिन्न प्रकार के वाद्य-यत्र, टेलिफोन-टाइपराइटर्स आदि की आवाज न जाने कितने प्रकार से हर क्षण हमारे कानो पर आक्रमण करती रहती है। यद्यपि प्राचीन काल मे भी ध्वनि न थी ऐसा तो नही था पर शहरो की घनी आवादी तथा कल-कारखानो के वढ जाने से आज समस्या गभीर हो गयी है। प्रतिवर्प दस प्रतिशत के हिसाव से वढने वाली इस ध्वनि पर यदि नियत्रण स्थापित नही हुआ तो वैज्ञानिक अनुमान करते है कि अगले कुछ दशको मे मानवजाति के वहरे हो जाने का खतरा पैदा हो जायेगा।

डॉ० जेराल्ड वी० डार्मन का मत है—हवा, पानी, फसल जमीन आदि को प्रदूपित करने वाले हानिकारक वायु, रसायन और निरर्थक कचरे के समान ही

आज कोलाहल मे भी हमारा पर्यावरण अत्यन्त दूषित हो गया है।

डॉ० हर्न ओनूडसेन (कैलिफोर्निया विद्यापीठ) ने कहा है—धुए तथा क्षारयुक्त हवा के समान ही कोलाहल-ध्वनि प्रदूषण का भी मृत्यु को नजदीक लाने मे बहुत बड़ा हाथ है। यदि हम आवाज न करते हुए धीरे-धीरे भी अपना काम करे तो वह सध सकता है। कोलाहल दिन-प्रतिदिन बढता जा रहा है। यदि वह इसी तरह बढता रहा तो अगले तीस वर्षो मे वह प्राणघातक साबित हो सकता है।

नोबेल पुरस्कार विजेता प्रसिद्ध सूक्ष्म जीव शास्त्रज्ञ डॉ० रोबर्ट ने आज से सत्तर वर्ष पहले कहा था—एक दिन ऐसा आएगा जब हमे मनुष्य के स्वास्थ्य के सबसे बडे शत्रु के रूप मे कोलाहल से सघर्ष करना पडेगा।

कोलाहल से मृत्यु! यह एक हास्यास्पद कल्पना जैसी बात लगती है पर यह एक हृदय-विदारक कटु-सत्य है। अमेरिका के वातावरण-सरक्षक विभाग ने अपनी रिपोर्ट मे कहा है—अकेले अमेरिका मे तीव्र आवाज से चार करोड लोगो के आरोग्य को धक्का पहुचा है। कार्यालयो या घरो मे शान्त जीवन बिताने वाले अन्य चार करोड लोगो की कार्य-क्षमता मे कमी आयी है। लगभग पचीस लाख लोग यत्र-प्रयोग के बिना कानो से सुनने मे असमर्थ हो गये है।

असह्य ध्वनि का प्रभाव केवल कानो पर ही नही होता अपितु सारे शरीर पर पडता है। श्वसन-प्रणाली, पाचन-प्रणाली, जनन-क्षमता तथा मज्जा सस्थान पर भी इसका गहरा प्रभाव पडता है। इतना ही नही, मस्तिष्क तथा स्नायुओ—खासकर हाथ-पैरो की नाजुक रक्त वाहिनियो—पर तो इसका और भी अधिक प्रभाव पडता है। आखो मे घाव, सिरदर्द आदि बीमारिया भी इससे अस्तित्व में आ सकती हैं।

ध्वनि का सबसे अनिष्ट प्रभाव तो कदाचित मज्जा संस्थान पर होता है। इससे निद्रानाश, चिडचिडापन, नैराश्य आदि के रूप मे मानसिक स्वास्थ्य चौपट हो जाता है, जिसका अन्तिम परिणाम आत्महत्या तक हो सकता है। गर्भस्थ शिशुओ पर भी ध्वनि का तीव्र प्रभाव होता है।

कुछ वैभवपूर्ण क्षेत्रो के कोलाहल के स्तर का सर्वेक्षण करने पर पता चला है कि वहा १९५६ मे जो स्तर था वह १९६८ मे चौगुना हो गया बल्कि १९३८ की अपेक्षा यह तो ३२ गुना ज्यादा हो गया है। इस प्रकार हम देखते है कि शहरो का वातावरण तो आज अत्यन्त कोलाहलमय हो गया है। कल-कारखाने तो इसके कारण हे ही, पर ऐसा लगता है जैसे मनुष्य ध्वनिप्रिय हो गया है। बहुत सारे लोग तीव्र सगीत को पसन्द करते है। 'रॉक एण्ड रोल जैसा संगीत आजकल के युवको को बडा प्रिय लगता है। पर प्रयोगो से ऐसा निष्कर्ष सामने आता है कि सतत कर्कश स्वर सुनते रहने से विकसित देशो मे १४ प्रतिशत बच्चो

की श्रवण-शक्ति ६५ वर्ष के वृद्धो जितनी हो गयी है। कोलम्विया विद्यापीठ के पाल एन० वारस्की का मत है कि मनुष्यो की वस्ती मे अनेक वार जो झगडे तथा दगे-फसाद होते है इमका मूल कारण तीव्र ध्वनि ही है। साधारणतया मनुप्य ८० डेसिवल तक के ध्वनिमय वातावरण मे विना किसी सताप के रह सकता है। इससे अधिक तीव्र आवाज सतापजनक मानी गयी है। यो तो १३० डेसिवल ध्वनि आदमी सहन कर सकता है पर यदि ९० से ११० डेसिवल ध्वनि मे आदमी लम्वे समय तक रहे तो उसकी स्मरणशक्ति को स्थायी हानि पहुच सकती है और विशेष वात यह है कि उसकी फिर कोई चिकित्सा भी नही हो सकती।

डेसिवल आवाज की तीव्रता के प्रमाण मापने की एक सकेत सज्ञा है। डेसिवल की सकेत सूची के कुछ आकडे इस प्रकार है—

	डेसिवल
अतिसूक्ष्म श्रवणेन्द्रिय से ज्ञात होने वाली आवाज	१
मनुष्य के हृदय की धडकन	१०
पेड के पत्तो की सरसराहट	२०
रेफ्रिजरेटरी गुनगुनाहट	३०-४०
वाहनो की भीड से सडक के किनारे के मकानो की आवाज	३०-४५
आपसी वार्तालाप	६०
कुत्ते का भौकना	६५
गुस्से से भरी आवाज	८३-८९
तेज दौड़ने वाली ट्रक की आवाज	९०
मेघ-गर्जना	११५
वडे कारखानो की आवाज	१२०
जेट विमान (३० मीटर दूर)	१२०
सायरन	१२०-१३०
रॉक एण्ड रोल का तीव्र सगीत	१३८
उडते हुए जेट विमान की आवाज	१४०
टर्वोजेट	१६०
रॉकेट	१९५

दूसरे महायुद्ध के वाद मे औद्योगिक प्रगति के नाम पर शहर तेजी से वढते जा रहे है। यदि हम ध्वनि-प्रदूषण की ऊपर दी हुई सूची पर नजर डाले तो यह निश्चित रूप मे कहा जा सकता है कि शहरो का वातावरण ध्वनि प्रदूषित

ही है। बड़े शहरो का वातावरण अधिक प्रदूषित है तो छोटे शहरो का थोडा। पर इसमे कोई सदेह नही है कि उन्होने अपने नागरिको के स्वास्थ्य-स्तर का उल्लघन कर दिया है। इसलिए विख्यात ध्वनि-विशेषज्ञ लियोएल वेहरनेक ने शहरो के विषय मे अपनी टीका करते हुए कहा है—विकास यत्रणा के अधीन वने हुए हम शहरी लोग कारावास मे वैठे हुए कैदी के समान है।

इसी प्रकार श्री जोसेफ एल मायजर ने कहा है—हमे इस तथाकथित प्रगति का मूल्य चुकाना पडेगा।

सचमुच ऐसी स्थिति मे वायुकाय की हिंसा से वचने के भगवान् महावीर के उपदेश का अपना एक विशेष महत्त्व वन जाता है। उन्होने तो वाद्य ध्वनि का भी सख्त निषेध किया है। आज के युग मे जहा डिस्को, रॉक एण्ड रोल, गिटार या कीर्तन के कर्णभेदी स्वर वातावरण मे कोलाहल पैदा कर रहे है, वहा महावीर का वाद्य निषेध अपनी सार्थकता को स्पष्ट अकित कर रहा है।

वानस्पतिक प्रदूषण

महावीर को त्रिकालदर्शी, सर्वज्ञ माना जाये या नही यह एक विवाद का विषय है। पर इसमे तो कोई सदेह नही है कि वे एक सूक्ष्मदर्शी व्यक्ति थे। उन्होने व्यक्ति और समष्टि को जिस अर्थपूर्ण दृष्टि से देखा था, वह अपने आप मे वहुत महत्त्वपूर्ण है। देश-काल की परिस्थितियो के कारण उनके व्यक्तित्व पर श्रद्धा का ऐसा आवरण आ गया था, जिससे वे भगवान् तो वन गये, पर उनके क्रान्त-दर्शन को समझने मे वहुत भ्रान्तिया हुई। सम्प्रदाय के घेरे के कारण उन्हे सुरक्षा तो मिली पर उनकी वैज्ञानिक दृष्टि धूमिल हो गयी। वर्तमान विज्ञान ने महावीर को फिर से एक नया जीवन और अर्थ प्रदान किया है। सचमुच महावीर को जितना सही आज समझा जा रहा है, वह अपने आप मे एक विशिष्ट वात है।

महावीर के जीवन-दर्शन के वारे मे कहा जाता है कि उनकी साधना वहुत कष्टमय है। महावीर जीवन को इस हद तक कसने की वात करते है कि जिससे उसका रस ही निचुड जाता है। पर महावीर का सयम पर वल देने का कारण भी अत्यन्त वैज्ञानिक है। उसे केवल आज के इकोलोजी (Ecology) के दृष्टिकोण से ही समझा जा सकता है। महावीर ने सूक्ष्मगति सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवो की अहिंसा पर भी उतना ही जोर दिया है, जितना कि वे मनुष्य की अहिंसा पर जोर देते है। इस दृष्टि से उन्होने जीवन को पृथ्वी, पानी, अग्नि, हवा, वनस्पति तथा त्रस—इन छह भेदो मे वांटा है। यद्यपि थोडे वर्षो पहले जीवन का यह विस्तार-विवेचन विज्ञान के लिए स्वीकार्य नही था, आज भी हो सकता है कुछ अशो मे इसमे मतभेद हो, पर वनस्पति के जीवन के वारे मे तो विलकुल

असदिग्धता प्रकट हो गयी है। महावीर ने साधक के लिए वनस्पति की हिंसा का तीव्र विरोध किया है। इसका कारण यह नही था कि वे काया को सक्लेश देना चाहते थे, अपितु उनकी दृष्टि मे वनस्पति के जीवो की एक वहुत गहरी सवेदना थी। आज वैज्ञानिको मे यह सवेदना अहिंसा की दृष्टि से तो नही उतरी है, पर प्रदूपण की दृष्टि से इस पर वहुत तीव्रता से विचार हो रहा है। पेड-पौधो की अहिंसा उनके अपने लिए ही अनिवार्य नही है अपितु मनुष्य के अपने स्वय के जीवन के लिए भी अनिवार्य है।

अभी-अभी जोधपुर विश्वविद्यालय मे वानस्पतिक प्रदूपण के सम्वन्ध मे आयोजित एक गोष्ठी मे वोलते हुए प्रो० जी० एम० जौहरी ने कहा था—पेड-पौधो से ही पृथ्वी पर जीवन है। वनस्पति के विना जैविक प्रक्रिया असम्भव है। जैविक सतुलन वनाए रखने के लिए पौध-सरक्षण आवश्यक है। सचमुच वनस्पति मनुष्य के लिए अनेक दृष्टियो से वरदान है। ससार मे जितना प्राण-वायु मे है, उसका वहुत वडा भाग वनस्पति से ही उत्पन्न होता है। चूकि मानव जीवन वनस्पति पर आधारित है, वही मनुष्य की समस्त आवश्यकताओ की पूर्ति करती है, उसका विनाश व्यक्ति का अपना स्वय का विनाश है। इसीलिए आज प्राणवायु की दृष्टि से भी वनो की कटाई और पौधो को सरक्षण दिये जाने की आवश्यकता है। ईसा पूर्व की शताब्दियो मे अनेक प्रकार के फल उपलब्ध होने के सकेत आज भी मिलते है। लेकिन सरक्षण के अभाव मे वे लुप्त हो गये। निश्चय ही आज वनस्पति-सम्पदा का जिस तरह विनाश हो रहा है, वह एक चिन्ता का विपय है। पेड-पौधो की लगभग ५०० प्रजातिया नष्ट हो गयी।

वनस्पति की अहिंसा का दूसरा पहलू है—वनो के कटने से प्राकृतिक सतुलन मे विषमता। इस दुनिया मे जितने भी पदार्थ है, वे हमारी धरती की वहुमूल्य सम्पदा है। इस दृष्टि से वृक्ष भी एक व्यक्ति की नही अपितु समस्त पृथ्वी की जीवनधारा से जुडी हुई प्राकृतिक उपलब्धि है। जव वन कट जाते है तो वर्पा का सतुलन विगड जाता है। पहली वात तो यह है कि उससे वर्पा के प्रतिशताक मे भी गिरावट आती है। दूसरी वात यह है कि जगलो के कट जाने से उनकी जल-सधारण की क्षमता कम हो जाती है। अत. पहाड कट जाते हैं। उससे दवकर मौते होती है, वे तो होती ही है, पर पानी का प्राकृतिक वाध टूट जाने से वाढ का भी भयकर खतरा पैदा हो जाता है। आज जो भयकर वाढे आती हैं, उनका एक मुख्य कारण वनो-जगलो का काटना भी है। भूतल की जलरेखा निरन्तर नीचे जा रही है।

प्रतिवर्प इसमे औसतन एक हजार करोड रुपये की क्षति होती है। इसके अलावा देश की करोडो टन उपजाऊ मिट्टी जो सीधे समुद्र मे वहकर चली जाती है, उसका तो कोई हिसाव ही नही है। ये दोनो वास्तव मे कोई दैवी

प्रकोप नही अपितु वनो की अधाधुन्ध कटाई से उत्पन्न विपदाए है। जो वन लोगो को खाद, चारा, ईंधन, खेती को उपजाऊ बनाने वाली पत्तियो की जैविक खाद और रेशा देकर सुखी और स्वावलम्वी वनाने के साधन थे, वे वड़े उद्योगो को कच्चा माल सप्लाई करने मे ही वीरान हो रहे है। ८५ हजार वर्ग किलोमीटर की भूमि अनुपजाऊ हो गयी।

भारत मे १९४७ मे वनो से होने वाली आय ८७ लाख रुपये थी, अव वह ४० करोड रुपये की हो गयी है।

कलकत्ता विश्व विद्यालय के कृपि वैज्ञानिक डॉ० तारकमोहन दास के अनुसार एक वृक्ष अपनी पूरी उम्र मे विविध रूपो मे मनुष्य को १५ लाख ७० रुपयो का लाभ देता है। पर अपने तुच्छ स्वार्थ के लिए मनुष्य इसे वहुत थोडे लाभ के लिए खो दे रहा है। वन, कृपि, मनुष्य और वन्य जीव एक-दूसरे के पूरक है। पर आज यह सतुलन विगड गया जिससे धरती का वानस्पतिक कवच क्षीण हो गया। स्तनपायी जीवो की ७१ प्रजातिया, ३२ परजीवो की १४ प्रजातिया तथा पशुपक्षियो की १०० प्रजातिया हो गई।

इसी प्रकार वनस्पति के विनाश से रेगिस्तान का जो विस्तार होता है, वह भी एक भयकर समस्या है। १९५४ मे किये गये एक स्थलाकृतिक सर्वेक्षण से यह पता चला है कि राजस्थान मे मरुक्षेत्र २१८००० वर्ग किलोमीटर मे फैला हुआ है। गुजरात और हरियाणा के कुछ क्षेत्र भी इस प्रकोप के शिकार है। उपरोक्त स्थलाकृतिक सर्वेक्षण के अनुसार इसके फैलाव की गति पिछले पचास वर्ष से ०८ किलोमीटर प्रतिवर्ष रही है। इस गति से यह फैलाव हर वर्ष १५००० हैक्टेयर उपजाऊ भूमि अपनी पकड मे ले रहा है। भू-वैज्ञानिको का मानना है कि भूमि की क्षमता से ज्यादा अगर उसका इस्तेमाल होता है तो उसके वडे घातक परिणाम हो सकते है। शुष्क भूमि के सदर्भ मे यह तथ्य जवकि वहा भूमि जल और प्राणियो का सतुलन सकटपूर्ण हो, विशेप रूप से लागू होता है। यह सतुलन जब भी विगडता है, उससे उवरने मे वहुत समय लगता है और खास तौर पर शुष्क क्षेत्रो मे और ज्यादा समय लगता है।

राष्ट्रीय कृपि आयोग ने सन् १९७४ मे अपनी रिपोर्ट मे मरु-विकास पर टिप्पणी करते हुए लिखा है कि मरु प्रदेश के पुनर्वास और विकास का कार्य अभी सामने है, जवकि मरुस्थल की समस्या विकट होती जा रही है। जनसख्या का वढता हुआ भार मरु प्रदेश की वनस्पतियो को प्रभावित कर रहा है, जिससे स्थिति और गभीर हो गयी है। नष्ट होने की यह प्रक्रिया ऐसी स्थिति मे पहुच गयी है कि अगर इसका निराकरण नही किया गया तो इसको रोक पाना मुश्किल होगा। इस प्रयास मे देरी का अर्थ ज्यादा कठिनाई, अधिक लागत और विकास की अनिश्चितता होगा। रेगिस्तान का विकास मानव द्वारा किया गया है और

वह उसके अपने अस्तित्व के लिए भी खतरा साबित हो रहा है। सचमुच मे इस सम्बन्ध मे जितने शोध प्रयास हो रहे है, वे बहुत ही चौकाने वाले है। इस दृष्टि से महावीर की अहिंसा अपना एक नया अर्थ ग्रहण कर लेती है। आचाराग मे भगवान् महावीर ने कहा है कि कोई साधक स्वय वनस्पतिकायिक जीवो की हिंसा करता है, दूसरो से करवाता है या करने की अनुमति अनुमोदित करता है, वह हिंसा उसके स्वय के लिए अहितकर होती है। आवश्यकता इसी बात की है कि हम महावीर की क्रान्त दृष्टि को युगीन सदर्भ मे समझे और उसे एक नया अर्थ-बोध दे सके।

श्री वीरसिंह ने अपने एक निबन्ध मे कहा है—चर्चिल और स्टालिन से मिलने तेहरान जाते हुए फ्रैकलिन डी रुजवेल्ट ने बाइबिल मे वर्णित 'मधु और दूध' का देश देखने के लिए नीचे की तरफ झाका। किन्तु उसकी जगह उनके सामने आया चट्टानी और दूर-दूर तक फैले हुए पत्थरो वाला एक मरुस्थल। वन-विनाश के दुखान्त नाटक का कही यही अन्तिम दृश्य न हो इस विचार से वे काप गये। वाशिगटन लौटते ही उन्होने वन सेवा के अध्यक्ष, अपने मित्र को बुलाया और पूछा कि सयुक्त राज्य अमेरिका ऐसे सर्वनाश के कितना निकट पहुच चुका है? 'अभी तो नही, राष्ट्रपतिजी,' उसने उत्तर दिया, 'पर यदि वनो को अधाधुन्ध काटे जाने पर रोकथाम के लिए उपयुक्त विधि-विधान न बनाया गया तो हम जल्दी ही वहा तक जरूर पहुच जायेगे।'

'वन और वानिकी' से उद्धृत उपरोक्त चेतावनी आज के सदर्भ मे सत्य सिद्ध हो रही है। उपजाऊ धरती, जिस पर सपूर्ण मानवता का अस्तित्व निर्भर करता है, द्रुतगति से मरुथल के चगुल मे आती जा रही है और आदमी के लिए हवा, पानी, पर्वत, भूदृश्य, वन—सब अतीत की वस्तुए बनते जा रहे है। यदि अब भी न चेते तो महाविनाश होकर ही रहेगा।

धरातल मे हरे आवरण के नष्ट होते जाने से मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्तियो मे ह्रास हो रहा है। आयरलैण्ड के अलस्टर क्षेत्र के निवासियो की आपराधिक प्रवृत्ति के कारणो की खोज करने के लिए अमेरिकी सरकार ने एक आयोग गठित किया था तथा अमेरिका की अपराध अन्वेपण शाखा ने एक रिपोर्ट प्रकाशित की थी, जिसमे लिखा था, 'यहा के निवासियो की हिंसात्मक प्रवृत्ति का कारण यहा की धरती का लगातार वन-विहीन होते जाना है।' यह रिपोर्ट विश्व के कई वन-विहीन प्रदेशो के व्यापक सर्वेक्षण के आधार पर तैयार की गयी थी। रिपोर्ट मे लिखा गया है कि वन-विहीन क्षेत्रो के निवासी बर्बर, क्रूर और हिंसक होते है, क्योकि ऐसे क्षेत्रो मे ऑक्सीजन की कमी हो जाती है जिससे शारीरिक और मानसिक रूप से कई रोग पनपते है, शरीर की कोशिकाओ मे ऑक्सीजन की कमी हो जाती है और अन्तत. इसका मस्तिष्क

पर बुरा असर पडता है तथा आदमी की प्रवृत्ति उग्र हो जाती है।

इतिहास साक्षी है कि जहा भी वन समाप्त हुए, सस्कृतिया और समाजें समाप्त हो गये, क्योकि वृक्ष-विहीन धरती अन-उपजाऊ रेगिस्तान मे वदल गयी और समाज भूख, प्यास तथा प्रदूषण के शिकार हो गये। वनाच्छादित पर टिके लोग शान्त, अहिसक तथा उदारतापूर्ण प्रवृत्ति के धनी थे। दुनिया की वे सभी जातिया, जो हिसक और वर्वर थी तथा खून-खरावे मे विश्वास करती थी, हरे-भरे आवरण से युक्त धरती को रौदती थी, सभी वन-विहीन प्रदेशो से सम्वन्धित थी।

भारतीय जीवन का प्रमुखतम पहलू यह है कि हमारी सस्कृति अरण्य की सस्कृति मानी जाती रही है, इसीलिए भारत को दुनिया में सभ्यता और सस्कृति का सिरमौर समझा जाता है। हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियो ने वनो मे रह कर ही दर्शन, अध्यात्म व विज्ञान का अध्ययन किया तथा आरण्यक भी लिखा।

भारत के वनो का क्रमवद्ध दोहन शुरू हुआ ब्रिटिश उपनिवेश का सूर्य उदय होने के वाद। स्थानीय राजाओ की मिलीभगत से अग्रेजो ने प्रारम्भ मे वनो का भरपूर दोहन किया। भारतीय राजा-महाराजाओ को भी जगलो से कमाई का चस्का लग गया, ब्रिटिश सरकार के कहने पर वनो का सामुदायिक अधिकार समाप्त कर वनो को अपने अधिकार मे ले लिया। उनका प्रवन्ध केवल धन कमाने के लिए किया गया। अग्रेज चले गये, किन्तु वनो का व्यापारिक दोहन अभी तक जारी है।

लेवनान के पर्वतो के वारे मे यह वताया गया कि ये पर्वत आज से ५००० वर्ष पूर्व देवदार, चीड, वाज और जनिफर के जगलो से ढके थे, किन्तु आज ये पर्वत सहारा रेगिस्तान की तरह नगे, अन-उपजाऊ, वीरान पडे है। इनका विनाश भी एक लम्वी कहानी से जुडा है। मिस्र के निवासियो ने इन जगलो को इमारतो और जहाजो के निर्माण के लिए पूर्णतया धराशायी कर दिया। वचे हुए जगलो को ब्रिटिश सैनिको ने द्वितीय विश्वयुद्ध के समय रेल लाइने विछाने के लिए नष्ट कर दिया।

आज लेवनान मे पर्यावरण ध्वस होने से इतिहास पलटा खा रहा है। वहां का समकालीन इतिहास रक्त-रजित है। वर्षो से चलता गृह-युद्ध, खून-खरावा— क्या यह दर्शाने के लिए काफी नही है कि वहा की वृक्ष-विहीन धरती ने लोगो मे क्रूरता और वर्वरता के वीज वो दिये है।

भारत मे २,६०,००० वर्ग किलोमीटर तक विस्तृत थार रेगिस्तान आज से २००० वर्ष पूर्व देश की सर्वाधिक उपजाऊ जमीन थी, पर हरियाली के आवरण का अधाधुन्ध हरण होने से वहा रेगिस्तान बन गया। ८४,००,००० वर्ग किलोमीटर क्षेत्र मे विस्तृत अफ्रीका का विशालतम सहारा मरुस्थल भी मनुष्य के प्रकृति के प्रति निर्मम व्यवहार का ही फल है। अरब देशो की आर्थिक समृद्धता भी अनवीनीकृत ससाधनो पर टिकी है। नवीनीकरणीय वन संसाधन वहा चुक गये है। अत. उनकी आर्थिक समृद्धता चिरस्थायी होने का प्रश्न ही पैदा नही होता। सम्पूर्ण अफ्रीका क्षेत्र तथा अरब देशो मे व्याप्त अशान्ति, हिंसा, खूनी-क्रान्तिया इसी पर्यावरणीय अधोगति की देन है।

संसार के उन क्षेत्रो को सुन्दरतम और सर्वाधिक आकर्पण माना जाता है जो ताजगी और हरियाली से आच्छादित होते हैं। सुखद हरियाली को देखते ही तन-मन मे थिरकन होने लगती है, मन झूमने लगता है। हारे-थके ऊबे हुए लोग बाग-बगीचो मे घूमकर, मखमली घास के गद्दो पर बैठकर अपनी थकान और तनाव दूर करते है। हरियाली के प्रति आदमी के मन मे सम्मोहन यो ही पैदा नही हो जाता। यह शरीर की आन्तरिक मांग होती है। हरे-भरे परिवेश मे आक्सीजन की प्रचुर मात्रा होती है, जिसकी शरीर के तन्तुओ और कोशिकाओ को आवश्यकता होती है। लेखक, कवि और बुद्धिजीवी अपना लेखन-कार्य करने और नवीन चिन्तन पैदा करने के लिए हरियाली से लदे पिकनिक स्पाट पर जाते है। एक अच्छी सोच, रचनात्मक कार्य एव चिन्तन एक ऐसे पर्यावरण मे रहकर ही सम्भव है, जहा दिमाग की कोशिकाओ को उनकी प्राथमिक आवश्यकता (ऑक्सीजन) प्रचुर मात्रा मे मिले।

वन हमारी प्राण-वायु के भण्डार है। एक आदमी को प्रतिदिन कम से कम १६ किलोग्राम ऑक्सीजन चाहिए और इतनी ऑक्सीजन पैदा करने के लिए ५० वर्ष की आयु और ५० टन वजन वाले पाच-छह वृक्ष होने चाहिए। दूसरे शब्दो मे, पांच-छह पेडो को काट डालना अप्रत्यक्ष रूप से एक आदमी को प्राण-वायु से वचित कर देना है। वास्तव मे दम घोटकर उसकी हत्या कर देना है।

किसी भी देश की सन्तुलित परिस्थिति की और अच्छी जलवायु के लिए कम से कम ३३ प्रतिशत भू-खण्ड पर जगलो का होना अनिवार्य है। पर भारत मे केवल २२.७ प्रतिशत भूमि पर जगल है और वे भी केवल कागजो पर। स्वय प्रधानमत्री स्वीकारती है कि वास्तव मे तो वन केवल १० प्रतिशत भूमि पर ही है। जिन्हे सरकारी कागजो मे 'वन' कहकर पुकारा जाता है, वहा केवल गिने जाने योग्य ठूठ वृक्ष अथवा झाडिया ही मिलती है।

जापान, स्वीडन, सोवियत सघ और अमेरिका मे वनो का क्षेत्रफल क्रमशः ६२, ५७, ४४ और ३३ प्रतिशत है जो कि पर्यावरणीय दृष्टि से बेहतर स्थिति का परिचायक है। भारत मे यदि कागजी वनो को देखे तो २२.७ प्रतिशत वन परिस्थितियो के लिए अनुकूल नही है। ऊपर से वनो का वितरण असमान है। अरुणाचल प्रदेश मे ९७ प्रतिशत, जम्मू-कश्मीर मे ६१ प्रतिशत, त्रिपुरा मे ६० प्रतिशत, हिमाचल प्रदेश मे ४८ प्रतिशत वन है, तो बिहार मे १७ प्रतिशत, उत्तर प्रदेश मे १८ प्रतिशत, राजस्थान मे ४ प्रतिशत और पजाब और हरियाणा मे मात्र २ प्रतिशत है।

वन-विहीन भूमि

तीसरी दुनिया के अन्य देशो मे भी जहा आये दिन हिंसक क्रान्तिया होती रहती है, तख्ते पलटते रहते है, हत्याओ और लूटपाट का ताण्डव जहा सदैव रहता है, एक बहुत बडी भूमि का हिस्सा वन-विहीन पडा है। विकसित देशो की दृष्टि इन देशो की बची-खुची वन-सम्पदाओ पर लगी है, जिससे वे और भी तेजी से पर्यावरण-गरीब होते जा रहे है तथा आर्थिक दरिद्रता के कारण एक औपनिवेशिक चक्र मे फसते जा रहे है।

खाद्य एव कृषि सगठन के अनुमान के अनुसार इस समय विश्व मे लगभग २०० करोड हेक्टेयर भूमि पर मरुस्थलीकरण की विपत् मडरा रही है और प्रतिवर्ष लगभग ६० लाख हेक्टेयर कृषि भूमि को मरुस्थल लील जाता है। वैसे तो मरुस्थलीकरण की प्रक्रिया को त्वरित करने के कई कारण है, जैसे पानी के प्राकृतिक बहाव मे व्यवधान, कृषि क्षेत्रो मे पानी भराव, रासायनिक उर्वरको एव जीवनाशी रासायनो की भूमि मे प्रयोग, किसी क्षेत्र मे अत्यधिक पशु चराने आदि। परन्तु प्रमुखतम कारण जो भूमि को मरुस्थल, बेजान और अनउपजाऊ बना देता है, वह भूमि पर वृक्षो का न पाया जाना है।

उपजाऊ मिट्टी नीचे की मिट्टी के कणो और सूक्ष्म जीवो तथा वनस्पति के मलबे के विघटन से बनने वाली प्रक्रिया है जो बडी ही मन्द गति से चलती है। एक सेटीमीटर मोटा स्तर बनने मे सौ वर्ष से भी अधिक लग जाते है तथा बहने मे चन्द घटे भी बहुत होगे। वृक्षो का झुरमुट वर्षा की धार को सीधे मिट्टी पर पडने से रोकता है। धरती पर जब पत्तियो की बिछावन होती है तो पानी धीरे-धीरे रिसकर जमीन मे जाता है। वृक्षो का छत्रक सूर्य की किरणो को भी सीधे भूमि पर नही पडने देता। जहा वृक्ष नही नष्ट होते वहा मृदा के पोषक तत्त्व सूर्य की किरणो की सीधी मार से नष्ट हो जाते है। वृक्षो की जडे बहुत गहराई तक जमीन मे चली जाती है और वहा मे पौष्टिक तत्त्वो को सोख

कर पत्तियो के माध्यम से मिट्टी की ऊपरी सतह पर पहुचा देती है। इस तरह मिट्टी की ऊपरी पर्त, जिस पर धान्य फसले उगती है तथा जो पृथ्वी पर सभी जीवधारियो को पोपित करती है, निरन्तर उपजाऊ वनी रहती है। इस प्रकार वन मिट्टी वनाने के कारखाने है। यदि उपजाऊ भूमि मरुभूमि मे वदल गयी तो उसका मतलव होगा—भूख, प्यास, अकाल, मृत्यु और इस तरह समाजो का विनाश।

उपजाऊ मिट्टी वनाने के अतिरिक्त वन जहरीली गैसो को पीकर, आक्सीजन पर्यावरण मे उडेल देते है। वैज्ञानिक परीक्षणो से पता चला है कि वन अथवा वृक्षो का झुरमुट प्रदूषण को सोख लेता है। वन वायु के वेग को नियन्त्रित करते है, जिससे वायु द्वारा मिट्टी का कटान रुकता है। वन वाढ़ भी रोकते है।

क्या वनो को, जो प्रत्यक्ष रूप से मानव के अस्तित्व से जुडे है, उद्योगो की वेदी पर वलि चढा देना एक अत्यन्त विनाशकारी कदम नही होगा ? यह जरूरी है कि वढती आवादी का पेट भरने के लिए कृषि भूमि को वनो के अन्तर्गत एक सीमा से वढकर नही लिया जा सकता, पर कृपि भूमि को उपजाऊ वनाए रखने के लिए, उसे मरुस्थल वनने से रोकने के लिए कृपि और वानिकी मे तालमेल वैठाया जाना अत्यन्त आवश्यक है। एक वार वृक्ष-मानव स्व० डॉ० रिचर्ड सेंट वर्वा वेकर से स्व० श्री जवाहरलाल नेहरू ने पूछा था, 'भारत मे रेगिस्तान को वढने से कैसे रोका जाए ?' डॉ० वर्वा का सक्षिप्त उत्तर था, 'खेतो के चारो ओर वृक्षो की कतार खडी करके।'

दूसरे महायुद्ध के वाद से औद्योगिक प्रगति के नाम पर शहर तेजी से वढते जा रहे है। यदि हम ध्वनि-प्रदूपण की ऊपर दी हुई सूची पर नजर डाले तो यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि शहरो का वातावरण ध्वनि-प्रदूपित ही है। वड़े शहरो का वातावरण अधिक प्रदूपित है तो छोटे शहरो का थोडा। पर इसमे कोई सदेह नही है कि उन्होने अपने नागरिको के स्वास्थ्य-स्तर का उल्लघन कर दिया है। इसलिए विख्यात ध्वनि-विशेपज्ञ लियोएल वेहरनेक ने शहरो के विपय मे अपनी टीका करते हुए कहा है—'विकास यन्त्रणा के अधीन वने हुए हम शहरी लोग कारावास मे वैठे हुए कैदी के समान है।'

इसी प्रकार श्री जोसेफ एल० मायजर ने कहा है—'हमे इस तथाकथित प्रगति का मूल्य चुकाना पडेगा।'

सचमुच ऐसी स्थिति मे वायुकाय की हिंसा से वचने के भगवान् महावीर के उपदेश का अपना एक विशेप महत्त्व वन जाता है। उन्होने तो वाद्य-ध्वनि का भी सख्त निपेध किया है। आज के युग मे जहा डिस्को, रॉक एण्ड रोल, गिटार या कीर्तन के कर्णभेदी स्वर वातावरण मे कोलाहल पैदा कर रहे है, वहा महावीर का वाद्य-निपेध अपनी सार्थकता को स्पष्ट अकित कर रहा है।

वनस्पतिकाय की हिंसा के अनेकविध दुष्परिणाम तो अत्यन्त स्पष्ट है। एक ओर उससे प्राणवायु का नाश हो रहा है, दूसरी ओर भूक्षरण को बढावा मिल रहा है तथा उसका ऊर्जरापन घट रहा है, तीसरी ओर वर्षा के अनुपात मे अन्तर आ रहा है तो चौथी ओर जनजीवो का विनाश तेजी से बढ रहा है।

आदमी को जमीन की जरूरत पडी। उसने जगलो को नष्ट किया, वस्ती वसायी, कही बांधो के बडे-बडे कृत्रिम जलाशय बनाये तो कही पहले से बने हुए तालावो को पाट दिया, कही पर जहा पहले से खेती होती थी वहा सडक बनाने, चरागाह बनाने के लिए उनका प्राकृतिक ढलाव नष्ट किया। उपलब्ध जमीन के इस तरह के परिवर्तन से भी पर्यावरण पर भारी अन्तर पडा। पेड़-पौधे के स्थानीय स्तर पर कटने से भी मिट्टी-पानी मे अन्तर आया है। उदाहरणार्थ, बरसात का जो पानी जमीन पर सीधे गिरने के बजाय, अरबो-खरबो पत्तियो से वेग मे मद्धिम होकर जमीन पर गिरता था वह कटे हुए पेडो अर्थात् इन पत्तियो के अभाव मे जमीन पर गिरता है तथा अधिक नुकसान करता है। मिट्टी का बहाव इस प्रकार स्थानीय स्तर पर पेडो के अभाव मे आधी की गति अथवा मरुस्थल के फैलाव मे काफी अन्तर आता है।

पर्यावरण-सतुलन मे जीव-जन्तुओ व वनस्पतियो का बहुत महत्त्व है। आदिकाल से ही मानव कुछ जगली वनस्पतियो को, अनाजो को व जानवरो को जैसे भैसे, गायो आदि को पालतू बनाता रहा है व कुछ को अपनी बस्तियो से हटाता जा रहा हे। इससे जीव-जन्तुओ, वनस्पतियो, यहा तक कि जीवाश्मो के भौगोलिक विस्तार व जनसख्या मे भी परिवर्तन आया है। कई वनस्पतिया ऐसी है, जिन्हे उगाने से भू-जल स्तर नीचे चला जाता है।

यह माना जाता है कि ईसा की पहली सदी मे उत्तरी अफ्रीका अन्न-उत्पादन की दृष्टि से अग्रणी देश था। वहा बर्फ से ढकी हुई पर्वतो की चोटियो, घने वृक्ष तथा कीमती वनस्पतिया थी। इतिहासकार प्लीनी का कहना है—'दुनिया मे ऐसा कोई पौधा नही था जो उत्तरी अफ्रीका मे नही मिलता था। जानवर तो वहा इतने थे कि उनकी गणना करना असम्भव था। वहा की विशाल घाटियो मे बहनेवाली बड़ी-बडी नदियो मे हाथियो से लेकर हर प्रकार के जानवर पानी पीते तथा नहाते थे। आज दक्षिणी अफ्रीका मे जो कीमती जानवर पाये जाते हैं वे सभी कभी उत्तरी अफ्रीका मे पाये जाते थे। उस समय वह एक राष्ट्रीय पार्क-सा ही था।'

आज यद्यपि वे पहाड वहा खडे हुए है। दुनिया की कुछ विशिष्ट जमीन भी वहा पर है। पर जो विशिष्ट पेड व वनस्पतिया वहा पर थी, उनका नामोनिशान तक नही दिखाई पड़ता। कौन था इस स्वर्गोपम घाटी के विनाश का जिम्मेदार हो सकता है। इसके कुछ प्राकृतिक कारण भी रहे है, पर सबसे ज्यादा जिम्मेदार

चावल से कई लोग मौत के मुह मे चले गए। रत्नागिरि मे राशन मे एड्रीन मिल जाने से लोगो को भयकर पीडा से गुजरना पडा था।

विश्व स्वास्थ्य के क्षेत्रीय परामर्शदाता श्री वी० वी० गायतुडे ने लखनऊ में सोसायटी ऑफ टेक्नॉलॉजी के उद्घाटन के अवसर पर कहा था—'अति खतरनाक ऑर्गनिक रसायनो, कृमिनाशको, कीटनाशको, प्लास्टिक सरीखी चीजो को पर्यावरण मे ठूसकर स्वय अपनी प्रजाति को इस पृथ्वी से समाप्त करने की प्रक्रिया को प्रारम्भ करने का सबसे बड़ा अपराधी मनुष्य है। मानव सभ्यता के इतिहास मे ऐसा कोई काल नही रहा है जब स्वय उसने अपने पर्यावरण को इतना दूषित किया हो।'

विश्व स्वास्थ्य सगठन के विशेषज्ञो ने कहा है—'कृमिनाशकों, कीटनाशको तथा रासायनिक खादो के अधाधुन्ध प्रयोग के फलस्वरूप जापानी माताओ के दूध मे बी० एच० सी० के अल्फा-बीटा-गामा और डेल्टा आयसोमल मिले है। बी० एच० सी० एक अति खतरनाक रासायनिक पदार्थ है।'

फासफोरसयुक्त रसायनो से मनुष्य मे कोलिनेस्टरेल नामक एन्जाइम का संश्लेपण नही हो पाता है। यह एन्जाइम सवेदन के वाहक का कार्य करता है। आधुनिक पेस्टीसाइडो के निरन्तर अंधाधुन्ध उपयोग से हमे लाभ के बजाय अधिक हानि उठानी पड रही है। जब ये पेस्टीसाइड वर्षा के पानी मे बहकर नदियो द्वारा समुद्र मे पहुचते है तो समुद्र मे रहनेवाले जीवो पर इसका घातक असर पडता है। डब्ल्यू० एच० ओ० एव एफ० ए० ओ० की रिपोर्ट के अनुसार मनुष्य मे डी० डी० टी०, डायलड्रीन और एड्रीन के सहने की क्षमता करीब ० १ पी० पी० एम० है। कुछ आलुओ की जातिया, जो महाराष्ट्र मे उगायी गयी, के विश्लेपण द्वारा ज्ञात हुआ है कि उनमे डी० डी० टी० की मात्रा ४.२ पी० पी० एम० एव डायलड्रीन तथा एड्रीन की मात्रा क्रमश १.४ पी० पी० एम० तथा २.६ पी० पी० एम० थी। बम्बई मे दूध का विश्लेपण करने पर उसमे ६.६ डी० डी० टी० और ४.३ डायलड्रीन की मात्रा पायी गयी। यह बात सर्वविदित है कि डी० डी० टी० । वसा मे घुलनशील है तथा जानवरो मे एडीपोज ऊतक मे जमा हो जाता है। वहा से यह दूध मे स्थानान्तरित हो जाता है। सन् १९७५ मे आई० आई० टी० बम्बई ने अपने सर्वेक्षण द्वारा अनुमान लगाया कि भारतीयो के भोजन मे औसतन ०.२७ एम० जी० डी० डी० टी० पायी जाती है।

हरित क्राति की अभिवृद्धि के लिए प्रयोग मे आनेवाली रासायनिक खादे, विशेप रूप से नाइट्रोजन वाली खादे, त्वचा के कैंसर के कारण-रूप है।

सौराष्ट्र विश्वविद्यालय के बायोसाइसेज के विभागाध्यक्ष डॉ० एम० सी० पाडेय ने सूचना दी है—'नाइट्रस आम्लाईड समताप मंडल (स्ट्रेटाकीपर) के ओरोन की पाथ से ८ से १० प्रतिशत नष्ट कर देता है। इसके फलस्वरूप

विकिरण की समस्या पैदा होती है। इससे त्वचा का कैंसर हो सकता है।

विषाक्त दवाओ के छिडकाव ने स्वीडन मे ऐसी गम्भीर स्थिति पैदा कर दी है कि उससे सघर्ष के लिए वैज्ञानिक लोग सरकार से धनराशि की माग कर रहे है। वे कह रहे है कि ऐसी विधि ढूढ निकालनी चाहिए कि विषाक्तता की पकड जल्दी से जल्दी हो जाए और उसका उपचार भी किया जा सके। पेट के ऑपरेशन के लिए स्टॉकहोम के अस्पताल मे भर्ती लोगो के रक्त-परीक्षण से ज्ञात हुआ है कि औसत रूप मे उनमे प्रति किलो २ ३ मि० ग्रा० डी० डी० टी० था, कुछ मे तो १२ मिलीग्राम तक।

अमेरिका में दूध के परीक्षण से ज्ञात हुआ कि दस लाख भाग मे ५३० भाग डी० डी० टी० है। किसानो और आटा मशीनो को चेतावनी दी गयी कि गेहू को डी० डी० टी० के सम्पर्क मे न आने दे। डी० डी० टी० गेहू के ऊपर के छिलके को पार करके गूदे तक पहुच जाता है और खानेवालो को हानि पहुचाता है (लन्दन न्यूज क्रोनिकल, १८ अक्टूबर, १९८०)। इन विषाक्त दवाओ के सम्बन्ध मे मिलने वाली रिपोर्टो का अमेरिकी काग्रेस पर यह प्रभाव पडा कि इनके सम्बन्ध मे शोध की रकम को एक हजार गुना बढा दिया।

अभी तो कुछ वैज्ञानिक यह स्वीकार करने के बावजूद कि ये दवाए विषाक्त है, यह नही मानते कि इनका कोई दुष्प्रभाव मनुष्य पर पडता है।

उनकी इस उक्ति को चुनौती देते हुए हार्वेड ने कहा—'यदि इन वैज्ञानिको का यह तात्पर्य है कि डी० डी० टी० अथवा अन्य विषाक्त छिडकाव के सम्पर्क मे आए अन्न को खाकर आदमी मर नही जाता या उस पर तुरन्त लकवे का प्रभाव नहीं दिखाई पडता, तो इतना समझ मे आ सकनेवाली एक बात है। पर हम इसकी उपेक्षा नही कर सकते कि इन दवाओ का छिडकाव जिस रूप मे बढा है, उसी रूप मे कैंसर, लकवा, न्यूरोसिस, अब तक अज्ञात अनेक त्वचा रोग, पेट की शिकायते और एलर्जियां बढी है। जनसाधारण का आम स्वास्थ्य तो स्तर से नीचे हो गया ही है।

माना कि पूरा दोष मात्र कीटनाशको और कृत्रिम खादो को ही नहीं दिया जा सकता। आज की सभ्यता के साथ आये भोजन, दवा और नशीली दवाओ का व्यवहार भी बहुत कुछ दोषी है। पर ऐसा मानने पर भी कहना होगा कि रोगो का अधिकाश भाग रासायनिक खादो और कीटनाशको के ही भाग मे जाता है।

लियोनार्ड विकॅडेन नामक एक अमेरिकी विद्वान् का कहना है कि पहले अमेरिका में प्रति व्यक्ति डेढ पौण्ड डी० डी० टी० का प्रयोग खेतो मे होता था। और खेतो मे डी० डी० टी० का छिडकाव करने का काम करनेवाले छह व्यक्ति

मृत्यु के शिकार हो गये। अब किसानो को उसका प्रयोग करने को नही कहा जाता है, क्योकि वह अन्न मे प्रविष्ट होकर उसे खानेवाले पशुओ की चर्बी मे पहुच जाता है। दूध देनेवाली गाय और भैसो के दूध मे भी डी० डी० टी० का अश मिलेगा।

इस डी० डी० टी० के फलस्वरूप दो रोग होते देखे गए है—यकृत मे सूजन आना तथा पीलिया।

पहले तो खेती करनेवाला प्रकृति के सयोग मे काम करता था, पर आज वह यात्रिक हो गया है। और फसलो पर दवा छिडकने का काम भी खुद करता है। मैनचेस्टर गार्जियन ने आकडा प्रस्तुत करते हुए कहा है कि १६४२ मे जहा दवा छिडकने की १६०० मशीने थी वहा १६५६ मे उनकी सख्या ४६०७५ पहुच गयी थी और लगभग ४०० प्रकार की दवाए छिडकी जाने लगी है। इनमे ७० प्रतिशत इस प्रकार की है, जिनके सम्पर्क मे चिडिया या कीडे-मकोडे जीवित ही नही रह सकते। ५ प्रतिशत फगस निरोधी है। इनमे अधिकाश मे पारे का सयोग होता है, जो स्वत विष है। इसके अतिरिक्त २५ प्रतिशत कीटाणुनाशक है। इन कीटाणुनाशक दवाओ मे एक दवा पेराथियान थी जिसके कारण कभी एक वर्ष मे तीन सौ व्यक्ति मरे थे।

एक बार कैंट के एक कारखाने मे फ्लोरोसेट आइट नामक एक दवा टीन मे सुराख होने के कारण चू गयी थी। उसके निकट भूमि मे चरनेवाले बीस पशु उसकी विषाक्तता से मर गए। एक अन्य स्थान पर कुत्तो और बिल्लियो की मृत्यु उसी रसायन के कारण हुई।

यद्यपि १६६० मे एक परीक्षण मे उस दवा को हानिरहित बताया गया था, पर उसी समय वॉल्टर मुर्के ने चेतावनी दे दी थी कि 'प्रयोगशाला के शोध के आधार पर किसी चीज को हानिरहित नही कहा जा सकता। उसका असली रूप तो बडे पैमाने पर प्रयोग होने के बाद ही सामने आता है।'

इन कीटनाशको के फलस्वरूप लाखो की सख्या मे चिडिया और भौरे मरे है।

केरल मे कोट्टायम के इलायची मडल द्वारा एक पत्रिका प्रकाशित की जाती है। हाल ही मे इसमे प्रकाशित एक रिपोर्ट ने केरल के लोगो को चौका दिया है। रिपोर्ट के अनुसार आटा, दाल, तेल, सब्जी, फल, दूध, मक्खन, अडे व मछली मे विष-तत्त्वो की वृद्धि हुई है। इन पदार्थो के सेवन से जिगर की सूजन, हृदय की रक्तवाहिनी मे गड़बडी, कैसर व अपग-भ्रूण विकसित हो रहे है।

भोज्य-पदार्थो मे कीटाणुनाशक डी० डी० टी० से सर्वाधिक खतरा उत्पन्न हुआ है। इस विष-तत्त्व से महिलाओ के स्वास्थ्य को अधिक खतरा है। समय से पूर्व ही बच्चे का जन्म होना, गर्भपात, एलर्जी, पेट की शिकायतें बढ गयी हैं। कुछ

महिलाओ मे मानसिक रोग के लक्षण प्रकट हुए थे जो शरीर से विष-तत्त्व का निवारण करने पर कम हो गये।

अब हर भारतीय अपने भोजन मे ०२६६४ मि० ग्रा० डी० डी० टी० सेवन करता है। भारतीय कृषको मे त्वचा रोगो की वृद्धि के लिए यही विष-तत्त्व अधिक जिम्मेदार है।

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के प्रो० डा० सेम्यूल हक्यू ने हाल ही मे एक विज्ञान पत्रिका मे अपनी सर्वेक्षण रिपोर्ट को प्रकाशित किया है। प्रो० हक्यू के अनुसार इस देश के नागरिक प्रतिवर्ष ३ मि० ग्रा० पारा विष-तत्त्व का सवेग करने लगे है। लगभग १८० टन पारा औद्योगिक प्रतिष्ठानो द्वारा प्रवाहित किया जा रहा है, जिसमे ८३ प्रतिशत क्लोरो अलकली उत्पादक केन्द्रो द्वारा कास्टिक सोडा व क्लोराइड के निर्माण के समय गरी मे वहाया जाता है।

विश्व स्वास्थ्य परिषद् के एक सर्वेक्षण के अनुसार खेतो मे काम आने वाली जहरीली कीटनाशक दवाए विकसित देशो मे प्रतिवर्ष पचास हजार व्यक्तियो के स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव डालती है और ५००० व्यक्ति मर जाते है। 'न्यूयार्क जनरल ऑफ कामर्स' का कहना है कि ये दवाए अधिकाशत अमेरिकी कपनिया निर्यात कर रही है और इस स्थिति पर कोई रोक नही है।

एक ओर तो खाद्य सामग्री की कमी और दूसरी ओर समुचित नियत्रण व्यवस्था का अभाव, इससे विकसित देशो की स्थिति निरन्तर वदतर होती जा रही है। भारत मे १९५० मे कीटनाशक दवाओ की खपत दो हजार टन प्रतिवर्ष थी, परन्तु अव अस्सी हजार टन से भी अधिक हो गई है। यह किसी भी दृष्टि से हितकर नही है। इस स्थिति के लिए एकमात्र उत्तरदायी है वहुराष्ट्रीय कपनिया। विश्व स्वास्थ्य परिषद् की रिपोर्ट मे इस तथ्य का विशेष उल्लेख है कि कीटनाशक दवाओ का निर्माण करने वाली वहुराष्ट्रीय कपनिया विकसित देशो मे इन दवाओ का इसलिए निर्यात कर देती है क्योकि पश्चिमी देशो मे इनके प्रयोग पर रोक लगी हुई है। उदाहरणस्वरूप परमोयरिन रसायन पर सयुक्त राष्ट्र अमेरिका मे रोक लगी हुई है पर ये कपनिया इसे भारत को निर्यात करती है। भारत के ही कुछ लोगो से इन्हे इस अनैतिक व्यवसाय मे गुप्त रूप से सहयोग मिलता है। इसके दुष्परिणाम भारतीय कृषि शोध सस्थान के कई सर्वेक्षणो मे सामने आये है। परीक्षण के लिए वम्बई, दिल्ली, लखनऊ, पुणे, वगलौर, कलकत्ता और मद्रास से फल, सब्जी, दूध इकट्ठा किया गया। पता चला कि इनमे कीटनाशक दवाओ के डी० डी० टी० (डायल्ड्रीन, आल्ड्रिन आदि) अवशेष थे। यह प्राप्त मात्रा विश्व स्वास्थ्य परिषद् की स्थापित मानव सहनशक्ति सीमा से अधिक थी।

डॉ० डेविट वुल ने अपनी पुस्तक 'ग्रोइंग प्रॉब्लम' मे लिखा है कि

भारत जैसे विकसित देशो के लिए दवाए अत्यन्त घातक है। भारत, श्रीलका और मलेशिया के दौरे के दौरान डॉ० बुल को भावी आशका का और भी यकीन हो गया था।

डॉ० बुल ने अपनी पुस्तक मे दक्षिण भारत के दीनवधु गाव का उदाहरण देते हुए निर्माताओ की आक्रामक विपणन नीतियो के वारे मे भी लिखा है। इस गाव के किसानो के पास कुछ कीटनाशक दवाए थी जिन पर ये निर्देश लिखे थे : 'दवा को ठडी और सूखी जगह और अधेरे मे रखे,' 'रवड के दस्ताने और मुखौटे का प्रयोग करे' और 'दुर्घटना की स्थिति मे तुरन्त डॉक्टर से सम्पर्क करे।' गाव के लिए डॉक्टर की व्यवस्था तो थी पर तीसरे विश्व के अधिकाश गावो की तरह यहा भी ठडी जगह और रवड के दस्ताने एव मुखौटे का उपलब्ध हो सकना मुश्किल था। इसके अतिरिक्त कुछ वोतलो पर निर्देश स्थानीय भापा मे नही थे और ६५ प्रतिशत लोग अशिक्षित थे।

डॉ० बुल लिखते है कि तीसरे विश्व के देशो के सम्मुख इन दवाओ के आयात को नियत्रित करने के कारगर कानून वनाने की समस्याए भी कम नही है। खाद्य एव कृपि परिपद् ने एक सर्वेक्षण के आधार पर वताया कि ८१ देशो मे इस तरह की कोई कानूनी व्यवस्था नही है, जिससे इस आयात पर रोक लगाया जा सके, तभी तो वहुराप्ट्रीय कपनिया इस कमजोरी का पूरा फायदा उठा रही है।

यूरोपीय समूह के ब्रिटेन, फ्रास और पश्चिमी जर्मनी इन दवाओ का व्यापक स्तर पर निर्माण करते है और इसलिए जून, १९८३ मे यूरोप की ससदीय कमेटी के एक प्रस्ताव को इन देशो ने अस्वीकार कर दिया। इस प्रस्ताव मे यह माग की गई थी कि प्रापक देशो की पूर्वलिखित स्वीकृति के विना ही कीटनाशक दवाओ पर रोक लगायी जाये। इस कमेटी ने राप्ट्रपति रीगन की भी निन्दा की कि जिन दवाओ पर अमेरिका मे रोक लगी हुई है उनके निर्यात को वह क्यो कर प्रोत्साहन दे रहे है। अमेरिका दो लाख टन विपैले रसायनो का निर्माण करके उन्हे प्रतिवर्प निर्यात कर रहा है। खाद्य और विकास नीति सस्थान की ओर से सेन फ्रासिस्को के तत्त्वावधान मे कीटनाशक दवाओ के निर्यात पर एक अध्ययन 'सर्कल ऑफ पॉयजन' किया गया। इस अध्ययन के अनुसार तीसरे विश्व को निर्यात की जानेवाली अधिकाश कीटनाशक दवाए विलास वस्तुओ के निर्यात मे काम आनेवाली फसलो पर छिडकी जाती है, न कि खाद्य सामग्री पर। दरअसल ये दवाए गरीवो की मदद करने की अपेक्षा कैसर, अप्रजायिता और मौत का कारण वन रही है। रिपोर्ट मे वहुराप्ट्रीय कपनियो की सूची मे डॉव, शैल, सेवस, होयस्ट, वेयर, आई० सी० आई०, ड्यूपोन्ट, हरक्यूलस, हूक और यूनियन कारवाइड का नाम है।

अमेरिकी प्रेस ने वहुराप्ट्रीय कपनियो के इस अमानवीय कर्म को 'शताब्दी का सामूहिक अपराध' वताया है। प्रमाण वतौर डी० वी० सी० पी० (कीटनाशक

दवा) का उल्लेख करते हुए बताया है कि यद्यपि अमेरिका मे इस पर रोक लगी हुई है, अमेरिकी कपनिया इसका निर्यात केन्द्रीय और उत्तर अफ्रीका को करती है, फलस्वरूप इनसे कैंसर और अप्रजायिता बढ रही है। इसी तरह से कोस्टारिका और इडोनेशिया को फोजवेल निर्यात किया जाता है जबकि यह मालूम है कि इससे स्नायुतत्र मे विकार पैदा हो जाते है।

मिस्र मे हाल ही मे निर्यातित लेप्टोफोस रसायन के कारण एक हजार से अधिक किसान और भैसे मर गई। अमेरिका ने यह रसायन तीस देशो को निर्यात किया था। गोटेमाला मे गाय के दूध मे डी० डी० टी० की मात्रा अमेरिका की स्वीकृत मात्रा से ९० गुना अधिक होती है। १९७९ मे ही अमेरिका मे डी० डी० टी० के प्रयोग पर रोक है, पर गोटेमाला के निवासियो के रक्त मे अमेरिकी लोगो की अपेक्षा तीस गुना अधिक डी० डी० टी० है। इसी से अदाजा लगाया जा सकता है कि अमेरिका लेटिन अमेरिका के भविष्य मे कितनी दिलचस्पी है।

भारत मे भी ये दवाए और जहर मौत का कारण बनी है। कर्नाटक के चिकमगलूर गाव के हरिजनो को पक्षाघात और अन्य घातक रोग हो गये थे। इन्होने उन धान के खेतो से केकडे पकडकर खा लिये थे, जिन पर कीटनाशक दवा छिडकी थी।

इस भयानक नृशसकारी खेल के सदर्भ मे यह जानना दिलचस्प होगा कि सोवियत सघ जिसका स्थान कृषि उपज मे महत्त्वपूर्ण है। कीटनाशक दवाओ की समस्या का सामना किस प्रकार करता है ? सोवियत सघ मे चिकित्सीय सस्थानो की ५३ शोध प्रयोगशालाए और विभाग है। ये प्रयोगशालाए दवाओ मे प्रयुक्त विषाक्त रसायनो का अच्छी तरह से विश्लेषण और मूल्याकन करती है। यह सारा काम 'आल यूनियन रिसर्च इस्टीट्यूट ऑफ पेप्टीसाइड्स, पोलीमार्स एण्ड प्लास्टिक्स' की सीधी देख-रेख मे होता है।

इस सस्था के निर्देशक लेव मेडवेड का कहना है कि 'हमारा प्रमुख काम वे शोध-कार्य करना है जिनसे रसायन के घातक प्रभावो की जानकारी प्राप्त करके लोगो के स्वास्थ्य और पर्यावरण की रक्षा कर सके।'

रासायनिक तत्त्वो की विषाक्तता का अध्ययन करते समय वैज्ञानिक इनके प्रभाव की वर्तमान न्यूनतम सीमा का ध्यान रखते हैं अर्थात् वह स्वीकृत मात्रा निर्धारित करते है जिसका शरीर पर प्रतिकूल प्रभाव नही पडे। इस तरह से तत्त्वो का अनुभव गाढापन स्थापित किया जाता है। सोवियत वैज्ञानिको ने इस विधि से दर्जनो मानदड स्थापित किए है जो पर्यावरण मे विभिन्न रासायनिक तत्त्वो की अनुभव मात्रा निश्चित करते है। इन मानदडो मे पानी और मिट्टी के प्रदूषण सम्बन्धी सयोगिक मानदड भी शामिल है।

मेडवेड का कहना है कि स्वास्थ्य सबधी अध्ययन करते समय हम वास्तविक

परिस्थितियो मे अध्ययन करते है क्योकि मानव शरीर अलग-अलग परिस्थितियो मे पर्यावरण के कई तत्त्वो से एक साथ प्रभावित हो सकता है। इसका अर्थ यह है कि परीक्षण के दौरान तत्त्वो के प्रभाव का अध्ययन विभिन्न सयोग मे किया जाता है।

मेडवेड का कहना है कि मानव शरीर पर विभिन्न रासायनिक तत्त्वो के जैविक प्रभाव का अध्ययन करने के लिए सुव्यवस्थित तरीके का चुनाव किया जाना चाहिए ताकि विष के प्रभाव का पता लगाया जा सके और परिणाम निश्चित किए जा सके।

सोवियत रूस मे कीटनाशक दवाओ को बनाने एव इनका खेती मे प्रयोग करने से पूर्व इनकी जाच विष वैज्ञानिक और स्वास्थ्य विभाग से करवाई जाती है। इससे पहले एक भी कीटनाशक दवा सोवियत रूस की राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था मे शामिल नही की जाती। रूस मे रासायनिक तत्त्वो के ९०० प्रकार मे से, जिनका कि इस्तेमाल पूरे विश्व मे कीटनाशक दवाओ के निर्माण के लिए किया जाता है, केवल दो सौ प्रकार को ही काम मे लाने की स्वीकृति दी है। आगामी वर्षो मे सोवियत विशेषज्ञ इन दवाओ के दूरगामी प्रभावो (कैसर, जननिक प्रभाव और जननिक जानकारियो मे बदलाव) पर और (१९८१-८५) विशेष ध्यान देगे।

इन दवाओ के विषाक्त होने के बावजूद जीव-जतुओ मे इनसे प्रतिरोध की शक्ति पैदा होती जा रही है। लदन से प्रकाशित 'ऑब्जार्वर' मे एक समाचार हाखेडेन-स्थित एक प्लाट-पेथेलॉजी की प्रयोगशाला के श्री ए० एच० स्ट्रीकलैड के हवाले से प्रकाशित हुआ था कि अमेरिका के पूर्वी भाग मे एक विशेष पतगे को मारने के लिए एक के बाद एक करके बाईस दवाए छिडकी गई, पर सभी असफल रही।

पर्यावरण-विशेषज्ञो का कहना है कि जिस लक्ष्य से कोई दवा छिड़की जाती है, कभी-कभी उससे सर्वथा भिन्न प्रभाव उनका देखने को मिलता है। डरहम विश्वविद्यालय के प्राणी विभाग के डॉक्टर के० आर० मेश्वी ने बताया कि सेव के एक बाग पर लेड आर्सिनेट का छिडकाव हुआ तो उस क्षेत्र के कीट विशेष मे उसके प्रतिरोध की शक्ति उत्पन्न हो गई और जब लगातार डी०डी०टी०छिडका जाता रहा तो उसके फलस्वरूप एक विशेष रूप के जन्तुओ की बहुतायत हो गयी। फिर उस बाग पर दवा का छिडकाव बिलकुल बद कर दिया गया और फल यह हुआ कि प्रकृति ने दस वर्ष मे उस क्षेत्र को पूर्णत कीटहीन बना दिया।

कितने ही हानिकारक कीट-पतगो को चिडिया खा जाती, पर हम कीटनाशक दवाओ से प्रतिवर्ष लाखो चिडियो को मार रहे है। दवा छिडकने का आपराधिक काम जो लोग करते है वे नही जानते कि यदि समस्त पक्षी जगत् समाप्त हो जाय तो सात वर्षो मे यह धरा मानव-विहीन हो जायेगी। कीट-पतग पौधो की पत्ती

ही नही, वल्कि सब फल खा जायेगे।

मधुमक्खिया मानवजाति की मित्र है, पर कीटनाशक दवाइयां उन्हे भी समाप्त करती जा रही हैं।

कीटनाशक दवाओ और रासायनिक खादो के फलस्वरूप हमारी धरती भी नष्ट की जा रही है। और उस धरती मे उत्पादित वनस्पतियो का प्रयोग करने के फलस्वरूप आज के मानव मे रोग-निरोधी शक्ति घटती जा रही है।

यह केवल सिद्धातभाव की वात नही है वल्कि तथ्य है। पूसा और क्वेटा के सरकारी फार्मो पर काम करते हुए सर अल्वर्ट हॉवर्ड ने इसे सत्य सावित कर दिया। कम्पोस्ट की खाद के चारे पर जो अनेक पशु थे, वे अधिक स्वस्थ थे और उनमे रोगो से प्रतिरोध की शक्ति अधिक थी। कुखका मुहपका रोगो से ग्रस्त पशुओ से अपनी नाक रगडने पर भी वे उस रोग से मुक्त रहे। उन्होने और उनकी पत्नी ने जो पुस्तके लिखी है उनसे वहुत कम सवक आज के युग ने लिया है।

'स्वायत्त एसोसिएशन' के भूतपूर्व अध्यक्ष श्री एस० मायल का कहना है कि यदि फसलो को कीडो-मकोडो और रोग से मुक्त रखना है तो उन्हे रोग से प्रतिरोध की प्राकृतिक शक्ति उत्पन्न करनी चाहिए और उसका एकमात्र उपाय कम्पोस्ट की खाद है। उन्होने लिखा है कि 'मैने अपनी छह सौ एकड भूमि मे ऑर्गनिक खाद डालना शुरू कर दिया। उससे मेरे फार्म की प्रति एकड उपज खूव वढी और फसल के दाने भी पहले से अधिक पुष्ट हुए।'

इस तरह के अनुभव अनेक व्यक्तियो ने प्रकाशित कराए हैं। पर आधुनिक समाज पर रासायनिक खाद के उत्पादको के प्रचार का ऐसा भूत सवार है कि वह इस ओर ध्यान नही देता है। रासायनिक खाद तो हानिकारक है ही, उसका उत्पादन करने वाले कारखाने भी कम हानिकारक नही हैं। वम्वई के चैम्वूर क्षेत्र मे यह समस्या लोगो के प्रत्यक्ष अनुभव मे आ रही है। वहा खाद के कारखाने से वातावरण मे सल्फर डाई ऑक्साइड तथा नाइट्रस ऑक्साइड हवा मे फैल रही है, जिससे त्वचा, फुप्फुस, आख, श्वसनतत्र आदि प्रभावित होते हैं।

गोरखपुर एन्वायरनमेंटल रावगन ग्रुप के सदस्यो ने उर्वरकनगर, रामगढ-एव सरदारनगर के आसपास पर्यावरण प्रदूषण की समस्या का निरीक्षण करने के वाद कहा है कि उर्वरक क्षेत्र के आसपास कार्वन की धूल एव अमोनिया से नागरिको के स्वास्थ्य को हानि पहुच रही है।

उर्वरक कारखानो के समीप के वातावरण का प्रारम्भिक अध्ययन करने के वाद सदस्यो ने अधिकारियो द्वारा वहुचर्चित कार्वनडस्ट से हो रहे जल-प्रदूषण जैसी ज्वलत समस्याओ पर उचित ध्यान न देने पर दुःख प्रकट किया। साथ ही साथ यह भी ध्यान दिलाया गया कि कार्वन के कण, समीप के पेड़-पौधों की

'फोटोसिंथेसिस' प्रक्रियाओ को हानि पहुचाने के साथ ही साथ आसपास के आवासीय भवनो मे रहने वाले लोगो के स्वास्थ्य को भी हानि पहुंचाते हैं।

सदस्यो द्वारा यह सुझाव दिया गया है कि मजदूरो को, जो कि कार्वन मे काम करते है, चेहरे पर लगाने के लिए 'मास्क' की भी व्यवस्था कारखाने को ही करनी चाहिए। कार्वन से हो रहे वायु-प्रदूपण को कम करने के लिए कार्वन लैगून के चारो तरफ ऊची दीवारे उठानी चाहिए तथा कार्वन का स्थानातरण यांत्रिक विधियो द्वारा किया जाना चाहिए। कारखाने के कई प्लांटो के पुराने होने तथा यत्रो मे लीक होने के कारण आस-पास की वायु मे अमोनिया की वहुलता पायी गयी, जो कि समीप के रहने वाले नागरिकों के स्वास्थ्य के लिए वहुत ही हानिकारक है।

उर्वरक कारखाने के अन्दर सदस्यो ने पाया कि क्रोमियम और आर्सेनिक से वडे-वडे वैरलो को जमीन में गाड़ दिया जाता है। यह आशका व्यक्त की गई कि भविष्य मे इन वैरलो मे जंग इत्यादि लगने से यदि कभी लीक हुआ तो यह निश्चय ही हमारे सचित भूगर्भीय जल को दूपित करेगा। अत. अधिकारियो से अनुरोध किया गया कि इस प्रक्रिया को तुरन्त वंद किया जाय।

सदस्यो ने सरदारनगर मे स्थित डिस्टिलरी एव चीनी मिलो के द्वारा हो रहे प्रदूपण का भी अवलोकन किया। सदस्यो ने वहा पाया कि डिस्टिलर्स मे प्रयोग हेतु राकमित 'शोरा' कई वीमारियो का जनक है। मच्छर एवं मक्खियो के द्वारा अनेक रोग फैलने की आशका व्यक्त की गई। इन कारखानो के द्वारा तीन लाख लीटर गर्म जल से (९५ डिग्री से) और कई रसायनो से युक्त कचरे के कारण जलीय पौधो और अनेक प्रकार के जीवो, मछलियो इत्यादि के लिए हानिकारक होने की आशका व्यक्त की गई।

इन सभी समस्याओ का अध्ययन करने के वाद सदस्यो ने इन वातावरणीय वीमार स्थानो के निवासियो से एव सरकार से उन सभी ज्वलत समस्याओ का समाधान करने के लिए सहयोग का आह्वान किया, जिसमे आने वाले दिनो मे भारत पश्चिमी देशो की तुलना मे वहुत पहले ही इन सभी समस्याओ से सजग हो सके।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जैन साधना पद्धति असदिग्ध रूप से एक ऐसी साधना पद्धति है जो प्रकृति के सतुलन मे जरा भी वाधक नही वनती। भगवान महावीर ने प्रदूपण से वचने का जितना उपाय किया है उससे ऐसा लगता है जैसे उनके सारे सकेत एक प्रकार से प्रदूपण से वचने के ही सकेत हैं। जैन मुनि न तो पृथ्वी को खोदते हैं, न उसमे किसी प्रकार की रासायनिक मिलावट ही करते हैं। नदियो, तालावो या समुद्र के पानी का दुरुपयोग तो खैर दूर रहा, वे उसका स्पर्श भी नही करते। न उसमे मलमूत्र का विसर्जन करते हैं। इसलिए शहरो मे रहकर

भी वे लेट्रीन या नालियो का उपयोग नही कर निपटने के लिए जंगल के एकांत मे जाते हैं। किसी प्रकार के कचरे का तो उनके लिए कोई अवकाश ही नही है। इसी प्रकार उनके लिए अग्नि का आरम्भ, समारम्भ भी सर्वदा वर्ज्य है। वे न तो विद्युत् का प्रयोग करते है, न किसी वाहन की सवारी करते है। किसी प्रकार के ईधन को भी काम मे नही लेते। यहा तक कि उनके लिए खाने की भी अलग से कोई व्यवस्था नही होती। इसी प्रकार ध्वनि का प्रदूषण भी उनके लिए असम्भव है; क्योकि वे पहले तो ज्यादा जोर से बोलते ही नही है, और बोलते है तो भी उनके मुह पर लगी हुई पट्टी उस ध्वनि-कम्पन को अपने उद्गम-स्थान पर ही आहत कर देती है। वनस्पति को भी किसी प्रकार की क्षति नही पहुचाते, बल्कि वे उसका स्पर्श भी नही करते। इन सारी बातो पर विचार किया जाय तो अपने आप स्पष्ट हो जाता है कि जैन धर्म प्रदूषण का नितात निषेधक है। कभी-कभी लोगो को लगता है कि जैन धर्म अत्यन्त कष्टकर धर्म है। पर वास्तव मे एक व्यापक स्वार्थ पर दृष्टि टिकाने वाले व्यक्ति को कुछ त्याग तो करना ही पडता है। क्योकि जैन धर्म स्वार्थ ही नही, परमार्थ है। अतः यह त्याग अपेक्षित है ही। पर इस त्याग का आनन्द अनन्त है।

शरीर-विज्ञान और जैन धर्म

महावीर जीवन की ओर से चलकर मृत्यु को प्राप्त नही होते है, अपितु मृत्यु की ओर से चलकर जीवन को प्राप्त होते हैं। उनका कहना है—यदि मृत्यु ज्योतिर्मय है, तो जीवन भी ज्योतिर्मय वनेगा। यदि मृत्यु ज्योतिर्मय नही है, तो जीवन भी स्वाभाविक रूप से वुझा हुआ ही रहेगा। पर इसका यह मतलव नही है कि वे मृत्यु की कामना करते हैं। नही, वे न तो जीवन की कामना करते है और न मृत्यु की क मना करते है। क्योकि जीवन है तो मौत है ही और मौत है तो जीवन है ही। जीवन और मृत्यु दो नही है। वे एक ही सिक्के के दो पहलू है। यदि कोई आदमी जीवन को खरीदने जायेगा तो उसे मौत को भी खरीदना पड़ेगा। उससे वचा नही जा सकेगा। इसलिए महावीर इस द्वैत से ऊपर उठकर एक अद्वैत की वात कहते हैं, वह है अमरता की वात। अमरता जीवन भी नही और मृत्यु भी नही। महावीर जीवन और मृत्यु को अपना लक्ष्य नही मानते। वे अमरता—अमृत्यु को अपना लक्ष्य मानते है, ऐमी मृत्यु से जो कि लौटकर नही आए। उनकी दृष्टि मे वह मृत्यु ही सच्ची मृत्यु है जो अमरता का दरवाजा खोल दे। इसीलिए वे उस जीवन पर जोर देते हं जो अमरतावाली मृत्यु की राह दिखा सके। ऐसी मृत्यु मे जीवन का निपेध नही है। जीवन का निपेध तो आत्महत्या है। महावीर आत्महत्या को सवसे वडा पाप मानते है। आत्महत्या मृत्यु तो है, पर अमरता नही है। इसलिए वह पाप है।

महावीर न तो जीवन के आकांक्षी है और न मृत्यु मे भयभीत। अपने ही शव्द मे वे 'जीवीतासा मरणभय विप्पमुक्के' हे। फिर भी यह सच है कि मृत्यु के विना अमरता नही मिलती। अमरता जीवन के निकट नही है, वह मृत्यु के निकट है। अमरता मे छलाग मृत्यु के प्लेटफार्म से ही लगानी पडती है, इसीलिए उनकी दृष्टि मे मृत्यु मूल्यवान वन जाती है। दुनिया मे शायद महावीर पहले व्यक्ति है, जो मृत्यु को पूरी व्यवस्था देते हैं। वे कहते है—ऐसा न हो कि मृत्यु आये और तुम्हे उठाकर ले जाए। अव वह आए तो तुम सावधान रहना। इसीलिए

उन्होने संथारा (अन्न-त्याग), सलेखना, आलोयना आदि के रूप मे बाकायदा मृत्यु को रेखाकित किया है। आचारांग के आठवे अध्ययन मे वे बहुत विस्तार से भक्त प्रत्याख्यान, इगिनीमरण (इत्वरित अनशन) तथा प्रायोपगमन—इन तीनो रूपो मे मृत्यु का आह्वान करते है। वे न तो जीवन की भीख मागते हे और न मृत्यु के सामने गिडगिडाते है, वल्कि मौत का स्वागत करने के लिए सामने खडे मिलते है। इसका यह मतलव नही है कि वे जीवन के विरोधी है। वे तो जीवन को अधिक समर्थ—सार्थक वनाने के लिए ही कुछ सकेत देते है।

अल्वर्ट श्वाइत्जर जैसे वहुत सारे लोगो को लगता है कि यह विचार जीवन का निपेधक है—'लाईफ निगेटिव' है। पर ऐसे लोगो के सामने अमरता का कोई विम्व नही होता। वे लोग जीवन को केवल दृश्य-घटना मानते है। महावीर इस दृश्य के पार जाते है। उनकी दृष्टि से अस्तित्व घटनाओ मे वद्ध नही हो सकता। वह अनत-अदृश्य है।

जव दृष्टि जीवन पर टिकती है, तो वह भौतिकता की ओर—पदार्थ की ओर मुड जाती है। जव वह मृत्यु पर टिक जाती है, तो निराशा पैदा होती है। एक ओर सुख है, दूसरी ओर दु ख है। महावीर सुख और दु ख के पार जाते है। वे आनन्द की वात कहते है। मृत्यु के समय यदि आनन्द की अनुभूति होती हो, तो अमरता सिद्ध होती है। महावीर दु खवादी नही है। वे यह नही कहते कि दु ख का आलिगन करो। पर वे यह भी नही कहते कि सुख का आलिगन करो। वे कहते है—मरते समय यदि शाति से मरते हो तो मृत्यु से छुटकारा पा सकते हो। सामान्यतया आदमी मरते समय दु ख मे मरता है। पर वास्तव मे दु ख सुख का ही पर्याय है। वह सुख से अलग नही है। इसलिए महावीर दु:ख पर तो रुकते ही नही, सुख पर भी नही रुकते। वैंजामिन फ्रैंकलिन ने भी वहुत गहरी वात कही है—'वहुत सारे आदमी सोचते है कि वे खुशिया खरीद रहे है, जवकि वास्तविकता तो यह है कि वे अपने आपको वेच रहे हे।' इसलिए महावीर न तो जीते समय सुख-दु ख की वात करते है, न मरते समय। वे तो केवल आनन्द की वात कहते है। वे पदार्थ के हाथ अपने आपको वेच देने की वात नही कहते। महावीर की साधना-पद्धति को एक शब्द मे व्यक्त किया जाए, तो वह शब्द होगा निर्जरा। निर्जरा का अर्थ है पूर्ण सस्कारो से मुक्ति। इसके वारह भेद है—छह वाह्य, छह आन्तरिक। इस निवन्ध मे क्रमश छह वाह्य भेदो की चर्चा की जाती है। उनके नाम है—अनशन, ऊनोदरी, भिक्षाचारी, रस परित्याग, कायाक्लेश और प्रतिसलीनता। निपेध-परक होते हुए भी आज के वैज्ञानिक युग मे वे किस प्रकार जीवन के लिए आवश्यक है—यह तथ्य यहा प्रकट करने का प्रयत्न किया जाता है।

महावीर अपनी बात अनशन से शुरू करते है। मृत्यु के समय आदमी का खाना अपने आप छूट जाता है। वह छोडता नही है, अपने आप छूट जाता है। तब व्यक्ति को दु ख होता है। क्योकि उसने जीवनभर खाने मे ही सुख माना था। महावीर कहते है—मृत्यु के समय तो तुम्हारा खाना छूटेगा ही, तब तुम दुःखी न होओ, इसीलिए पहले ही खाना छोडने का अभ्यास रखो। पहले ही बिना भोजन के आनद की अनुभूति का अभ्यास रखो। इसका अर्थ देह का दमन नही है। यह देह की सज्ञा से ऊपर उठने की बात है, आत्मानुभूति की बात है। जब व्यक्ति को देह और आत्मा की भिन्नता की अनुभूति हो जाती है, तो उसके लिए तपस्या दु.ख की हेतु नही रहती, सुख की हेतु तो खैर रहेगी ही कहा से? तब वह आनद की हेतु बन जाएगी। देह और आत्मा की भिन्नता की अनुभूति नही होती है, तब तक खाना छोडने मे डर लगता है। पर सही अर्थ मे देखा जाए तो मनुष्य को दु ख खाना छोडने मे नही है, अपितु खाने मे ही सुख मान लेने की सज्ञा मे है। इस मिथ्यात्व का परिशोधन करने के लिए महावीर अनशन—उपवास की बात कहते है।

उपवास कितना करना चाहिए, इसके विषय मे वे कोई निश्चित मानदड नही बताते है। ऐसा नही है कि इतना उपवास करना पड़ेगा। जहां तक मन मे आनद की अनुभूति हो, तब तक उपवास करो। जो उपवास आनद की अनुभूति नही कराता है, उसके लिए महावीर की अनुमति नही है। यद्यपि कभी-कभी जो लोग महावीर को ठीक से नही समझते, वे उनके नाम पर बिना आनद के भी उपवास-तपस्या करते रहते है। पर ऐसी तपस्या बहुत लाभप्रद नही है। जो तपस्या देह और आत्मा की भिन्नता, पुद्गल-निरपेक्ष आनद का अनुभव नही करा सके, वह वास्तव मे तपस्या कम, देह-दड अधिक है।

साधना की बात बहुत सारे लोग आसन-प्राणायाम से शुरू करते है। महावीर उसे अनाहार अनशन से शुरू करते है। सम्भवतः इसका कारण यही रहा होगा कि जब मनुष्य का आहार पर नियत्रण हो जाएगा, तो बाकी के सब नियत्रण तो सहज ही प्राप्त हो जायेगे। इसलिए वे उपवास को बहुत अधिक महत्त्व देते है। इसके साथ दूसरा सवाल उठता है कि क्या बिना आहार के जीवन का काम चल सकता है? जैसा कि पहले कहा गया, महावीर की दृष्टि जीवन और मृत्यु पर नही है। आहार के साथ हमारा इतना घनिष्ठ लगाव है कि हम उसके बिना रह नही सकते। महावीर सबसे पहले इस लगाव को ही तोडना चाहते है। ऐसा नही है कि एक आहार न किया, तो आदमी मर जाए। कठिनाई यही है कि आदमी का आहार के साथ इतना लगाव हो गया है कि उपवास की बात करते

ही उसका सारा मानसिक ढांचा चरमरा जाता है। मैंने देखा है, कुछ लोग आहार-सज्ञा से इतने ग्रस्त है कि उपवास के नाम से ही उन्हे वमन होने लगता है। वहुत सारे लोग साधारणतया दस-बारह वजे तक कुछ न खाए तो चलता है। पर यदि उनके मन मे उपवास का सशय वैठ जाता है, तो उन्हे उठते ही वेचैनी महसूस होने लगती है। यह वेचैनी कहा से आयी ? निश्चय ही यह आहार-सज्ञा की प्रगाढता है। अत महावीर सवसे पहले इस प्रगाढता पर ही प्रहार करना चाहते है। इसका यह मतलव नही है कि आज ही सथारा—अनशन शुरू कर दिया जाए। जव व्यक्ति की समता इतनी मजवूत हो जाए कि वह आहार के विना भी आनद अनुभव कर सकता है तो अनशन किया जा सकता है। पर इसका यह मतलव नही है कि उसे आज से ही शुरू कर दिया जाए। धीरे-धीरे आदमी इसका अभ्यास करे। देह का त्याग तो प्राणी को करना है, चाहे तो भी करना है, अनचाहे तो भी करना है। कोई इससे वच नही सकता। पर जो व्यक्ति उपवास के माध्यम से देह और आत्मा की भिन्नता का दर्शन कर लेता है, वह मृत्यु के आगमन पर दु खी नही होगा, आनदित होगा। वह समझ लेगा मृत्यु अत नही है, अपितु जीवन का ही एक अंग है।

आजकल तो चिकित्सा के क्षेत्र मे भी उपवास को मान्यता मिल गई। जैन धर्म मूल मे शरीर-विज्ञान नही है। वह तो आत्मविज्ञान है। पर चूकि हमारी आत्मा शरीर मे रहती है अत वहा शरीर के सम्वन्ध मे भी वहुत सारी चर्चा हुई है। शरीर कितने है, वे अपना कार्य किस तरह से करते है, इत्यादि विपयो पर वहा इतनी सूक्ष्म चर्चा की गई है कि वह अध्ययन का एक अलग ही विपय है। यह सारी चर्चा यहा प्रासगिक नही है। जैन साधना-पद्धति का उद्देश्य शरीर की पवित्रता के साथ निश्चित अनुवध तो नही है। पर वे इस वात को भी स्वीकार करते है कि उच्चतम साधनाओ के लिए एक विशिष्ट प्रकार के शरीर-संघयण की आवश्यकता है। जैसा कि लुई हूक ने कहा है—स्वस्थ शरीर वही है, जो आवेगमुक्त हो। महावीर भी साधना के लिए आवेगमुक्त शरीर की आवश्यकता वताते है। जव तक शरीर आवेगग्रस्त होगा, तव तक उसमे स्वस्थ आत्मा का निवास न हो सकेगा। उपवास से आवेगो पर नियंत्रण प्राप्त किया जा सकता है।

उपवास-चिकित्सा

कुछ लोगो को यह सुनकर विस्मय हो सकता है—क्या उपवास से भी चिकित्सा हो सकती है ? पर आज इस वात पर विस्मय करने की कोई आवश्यकता नही है। डॉ० एडवर्ड हुकर देवी ने 'The Non-break-fast Plan and Fasting

Cure' नाम की एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक लिखी है। उनका कहना है—बीमारी मे जबरदस्ती खाने और दवाए लेने की अपेक्षा उपवास अधिक लाभप्रद है।

प्राकृतिक चिकित्सा की दृष्टि से लम्बे तथा छोटे—दोनो ही प्रकार के उपवासो का विधान है। छोटे उपवास अर्थात तीन दिन के उपवास। उससे ज्यादा दिनो के उपवास बडे उपवास कहलाते है।

उपवास-काल मे कभी-कभी भोजन की इच्छा, बेचैनी या कमजोरी महसूस हो सकती है, पर ये सारी स्थितिया अस्थायी है। इन्हे उपवास के सकल्प मे आड़े नही आने देना चाहिए। प्रो० दूहरिट ने अपनी पुस्तक 'Diet and Healing Systems' मे लिखा है—उपवास काल मे जो कमजोरी महसूस होती है, वह भोजन का अभाव नही है, अपितु शरीर मे एकत्र मल का विनाश होता है। शरीर की शुद्धि हो जाने के बाद शरीर मे पुन शक्ति आ जाती है। यह कोई जादू नही है, अपितु शरीर मे स्थित विजातीय द्रव्यो के हट जाने से सहज प्रतिफल होता है।

साधारणतया लोगो की धारणा है कि भोजन की मात्रा जितनी अधिक होगी, उतनी ही शक्ति प्राप्त होगी। पर यह धारणा सर्वथा भ्रामक है। सच बात तो यह है कि हमारा स्वास्थ्य और दीर्घ जीवन भोजन की मात्रा की अपेक्षा उसके पाचन की ऑर्गनिक प्रक्रिया तथा आत्मसात करने पर अधिक आधारित है।

अपनी जिह्वा के स्वाद तथा अप्राकृतिक आदतो के कारण हमारे शरीर मे अनेक प्रकार का विजातीय कचरा इकट्ठा हो जाता है। उसके प्रभाव से मुक्त होने के लिए उपवास एक रामबाण औषधि के समान है। साधारणतया लोग उपवास से डरते है। डॉक्टर लोग भी यही कहते है कि शरीर की शक्ति बनाये रखने के लिए कुछ न कुछ खाते रहना चाहिए। पर प्राकृतिक जीवन जीने वाले प्राणियो की ओर ध्यान दिया जाए तो यही लगेगा कि वे अपनी बहुत सारी बीमारिया उपवास के द्वारा ही ठीक करते है। धीरे-धीरे इस ओर लोगो का ध्यान जा रहा है, यह भी एक शुभ लक्षण है। उपवास के अनेक रोगो से मुक्त हुआ जा सकता है। यह आपको क्षीण करनेवाला नही है, अपितु तेजस्विता प्रदान करने वाला है।

डॉ० लक्ष्मीनारायण शर्मा ने अपनी पुस्तक 'सरल प्राकृतिक चिकित्सा' मे उपवास के विषय मे अनेक महत्त्वपूर्ण बाते लिखी है, जो सक्षेप मे इस प्रकार है—

उपवास शरीर मे क्या करता है ?

शरीर मे स्वाभाविक रूप से अनेक प्रकार की ज्वलन-क्रिया (कम्बश्चन) होती

रहती है। ज्वलन-क्रिया के कारण ही हमारा शरीर एक खास तापक्रम तक गरम रहता है। इसे तेजस् शरीर भी कहा जा सकता है। लेकिन ज्वलन-क्रिया जारी रखने के लिए हमेशा ईंधन की जरूरत होती है। साधारण रूप मे हमे यह ईंधन भोजन के कार्वोहाइड्रेट्स और चर्वी (चिकनाई) से मिलता रहता है। लेकिन उपवास-काल मे जव वाहर से भोजन मिलना वन्द होता है, तो शरीर मे सगृहीत भोजन आकर इस अग्नि मे जलने लगता है। इसीलिए उपवास द्वारा चर्वी वहुत जल्दी कम होती है। केवल चर्वी ही नही जलती, पेशिया, रक्त और जिगर मे से सग्रहीत शक्कर आकर जलती है। प्रत्येक धातु (टिशू) से सग्रहीत भोजन आकर जलने लगता है और इस सग्रहीत भोजन के साथ प्रत्येक धातु की सगृहीत गदगी (विजातीय द्रव्य) भी उखडकर आती है और इस ज्वलन-क्रिया मे भस्म हो जाती है। इसीलिए यह कहा जाता है कि उपवास शरीर की भीतरी गर्मी का नाश कर देता है।

शरीर पर उपवास का प्रभाव

शरीर की जमा पूजी खत्म होने के कारण उपवास-काल मे शरीर का वजन प्राय. १ पौड प्रतिदिन के हिसाव से कम होता है। शरीर की विभिन्न धातुए इस अनुपात से छीजती है। चर्वी ६७ प्रतिशत, जिगर ६२ प्रतिशत, तिल्ली ५७ प्रतिशत, मासपेशिया ३१ प्रतिशत, मस्तिप्क या ततु ० प्रतिशत। इस छीजन के कारण उपवास-काल मे शरीर मे कुछ कमजोरी आती है, लेकिन चूकि मस्तिस्क विलकुल नही छीजता, इसलिए सोच-विचार की शक्ति वढती है, नीद अच्छी आती है, विचार सात्त्विक होने लगते है, स्मरणशक्ति वहुत तेज हो जाती है।

शारीरिक कमजोरी इस कदर नही होती है कि उपवासकर्ता को खाट पर लेटना पडे, वल्कि वहुत साधारण-सी दुर्वलता आती है। व्यक्ति घूम-फिर सकता है, अपने दैनिक काम वडे मजे से कर सकता है। उपवास मे प्रातकालीन घूमना वहुत लाभ करता है। और यह काम व्यक्ति आसानी से कर सकता है। कोई कमजोरी नही मालूम होती, वल्कि भ्रमण से लौटने के वाद शक्ति और स्फूर्ति का अनुभव होता है। अनेक व्यक्ति तो टहलने के वाद हल्का व्यायाम भी करते है। लेकिन व्यायाम कोई जरूरी नही, टहलना ही काफी है। एक सप्ताह तक के छोटे उपवासो मे तो दफ्तर या दुकान का काम भी आसानी से किया जा सकता है। अलवत्ता लम्बे उपवासो (३०-४०-५० दिन) मे फिर भी आराम की जरूरत होती है, लेकिन कमजोरी की परेशानी तव भी नही महसूस होती। यदि उपवास-कर्ता उपवास के महत्त्व को अच्छी तरह समझता है और उपवास पर उसकी आस्था है, तो उसे प्राय. उपवास मे कोई दुर्वलता नही आती। अधिकाश लोगो

को दुर्बलता न खाने के डर से पैदा हो जाती है।

उपवास-काल मे शुरू के दो दिन भूख सताती है लेकिन यह असली भूख नही होती। क्योकि तीसरे दिन यह भूख समाप्त हो जाती है। भूख के समय अधिक पानी पी लेने से उसका कष्ट मालूम नही होता। उपवास मे दूसरे या तीसरे दिन जीभ पर सफेद मैल आ जाता है। कभी-कभी श्वास से वदबू भी आती है। दातो मे चिपचिपाहट पैदा हो जाती है। नये उपवासकर्त्ताओ को इन लक्षणो से भ्रम मे नही पडना चाहिए। ये लक्षण इस वात का सबूत होते है कि शरीर के विजातीय द्रव्य वाहर आ रहे हैं। फिर ये लक्षण अपने आप ही दूर हो जाते है। ज्यो-ज्यो शरीर की अदरूनी सफाई होती जाती है, शरीर मे हल्कापन, स्फूर्ति, उत्साह और नीरोगता अनुभव होने लगती है।

विभिन्न रोग और उपवास

उपवास ऐसा उपचार है जो प्राय सभी रोगो मे अपना चमत्कारी प्रभाव दिखाता है। रोग चाहे नया हो अथवा पुराना, उपवास निश्चित रूप से उस पर कावू पा लेना है। यहा हम स्थान की कमी के कारण उपवासकर्ताओ के अनुभव नही दे पा रहे है। लेकिन अव तक लाखो लोग उपवास से अद्भुत लाभ उठा चुके है। हजारो केस ऐसे होते है, जिन्हे डॉक्टर, हकीम असाध्य मानकर जवाव दे देते है, वे ही रोगी उपवास से ठीक हो जाते है। दमा, वढ़ा हुआ रक्तचाप, ववासीर, एग्जिमा (चमला), मधुमेह ऐसे रोग माने जाते है, जिनका कोई इलाज नही होता। लेकिन न मालूम इस तरह के कितने पुराने और असाध्य रोग जैसे फसली बुखार, टाइफाईड (मियादी बुखार), चेचक जैसे रोगो में भी उपवास अपना चमत्कारपूर्ण प्रभाव दिखाता है। अमेरिका के डॉ० एडवर्ड डेवी ने तो अपने वच्चे का डिप्थीरिया जैसा घातक रोग उपवास से ठीक कर लिया था। कब्ज और कब्ज से पैदा होने वाले रोग मे तो उपवास मे वहुत जल्दी लाभ होता देखा जाता है।

उपवास की अवधि

उपवास २-३ दिन से लगाकर २ मास अथवा इससे भी अधिक दिनो का किया जा सकता है। एक सप्ताह तक का उपवास छोटा उपवास कहलाता है। सप्ताह से अधिक समय के उपवास लम्वे उपवास की श्रेणी मे आते है। उपवास की अवधि रोगो के अनुसार नहीं, वल्कि रोगियो की हालत के मुताविक निश्चित की जाती है। रोग का पुराना या नयापन, रोगी के शरीर की शक्ति, रोगी के शरीर मे रोग की गहराई तथा रोगी की मानसिक स्थिति आदि जाचकर ही उपवास

की अवधि निश्चित की जाती है। यो नये रोगो मे छोटे उपवास और पुराने रोगो मे लम्बे उपवास अपेक्षित होते है। प्राय. एक सप्ताह से कम के उपवास से कोई खास लाभ नही होता। फिर भी प्रारम्भ करने वाले यदि शुरू मे ३-४ दिन का उपवास करना चाहे, तो अनुभव प्राप्त करने की दृष्टि से यह ठीक होता है। लम्बे से लम्बा उपवास भी जब विधिवत् किया जाता है तो उससे कभी खतरा पैदा नही होता। अनेक व्यक्तियो ने दो-दो मास के उपवास सफलतापूर्वक किये है।

उपवास मे सावधानी

उपवास मे कभी-कभी खतरे और परेशानिया भी पैदा हो सकती है। अतः इस पहलू पर निगाह डाल लेनी चाहिए। प्राय उपवासकर्ता लोग अपने अनुभव पत्र-पत्रिकाओ मे छपवा देते हैं। या कोई छोटी किताब प्रकाशित कर देते है। ऐसे साहित्य मे उपवास के गुणो की लम्बी सूची पढकर उपवास को सर्वरोगहारी जादू की गोली नही मान लेना चाहिए। ऐसी धारणा लेकर जो लोग उपवास शुरू कर देते है उन्हे बहुत बार निराश होना पडता है। यह बात सोलह आने ठीक है कि उपवास हर रोग को ठीक कर सकता है, लेकिन हर रोगी को नही। जिस रोगी की जीवनी-शक्ति बहुत घट चुकी होती है, उसे उपवास से कोई लाभ नही होगा। जैसे टी० बी० के दूसरे या तीसरे दर्जे की हालत का रोगी और अन्तिम दर्जे तक पहुचा मधुमेह का रोगी। इसके अलावा दिल और गुर्दे की भी कई ऐसी पेचीदा बीमारिया होती है जिनमे उपवास से लाभ नही हो पाता। कुछ रोगियो की ऐसी दशाए भी होती है जहा उपवास एकमात्र इलाज न होकर इलाज का एक अग होता है।

उपवास का मूल्याकन गलत न हो, इसलिए निम्नलिखित सावधानियो को ध्यान मे रखना चाहिए—

उपवास पर जब मन मे पूरी आस्था उत्पन्न हो जाये, तभी उपवास शुरू करना चाहिए। भूखे कैसे रह सकेंगे—मन मे ऐसी दुविधा बनी रहेगी, तो उपवास को आप निभा नही सकेंगे, एक-दो दिन किया भी तो उससे कोई लाभ नही होगा।

लम्बे उपवास का निश्चय मन मे शुरू से नही करना चाहिए, अन्यथा उपवास भारी मालूम पडता है। एक-एक दिन बढाते हुए चाहे आप एक महीने तक ले जाए तो कोई दिक्कत नही होगी।

प्रारम्भ मे लम्बे उपवास नही करने चाहिए। पहले एक सप्ताह का छोटा-सा उपवास करके अनुभव प्राप्त करे। फिर लम्बे उपवास के लिए स्वय ही

अन्त प्रेरणा मिलेगी। जो लोग एक सप्ताह न करना चाहे, वे तीन या चार दिन का उपवास करके देखे।

हालाकि लम्बे उपवासो से भी ३३ प्रतिशत कोई खतरा नही होता, लेकिन फिर भी लम्बे उपवास किसी विशेषज्ञ की सलाह से करने चाहिए। कभी-कभी उपवास मे पित्त की कै हो सकती है। किसी-किसी समय उठते-बैठते चक्कर भी आ जाते है। लेकिन ये लक्षण कोई बुरे नही होते। चिकित्सक की सलाह रहती है तो लोग इनसे घबराते नहीं।

आम तौर पर कहा जाता है कि उपवास तभी तोडना चाहिए जब जीभ की सफेदी हट जाए। लेकिन कभी-कभी एक मास तक जीभ साफ नही होती। अत जीभ साफ होने के फेर मे नही पडना चाहिए।

भूख की बात भी कुछ ऐसी है। स्वाभाविक रूप से जब भूख जागे, तभी उपवास तोडना चाहिए। लेकिन बहुत बार भूख भी बहुत दिनो तक नही लौटती। अकसर उपवास तोडने के बाद भूख खूब जागृत होती है।

कभी-कभी उपवास-काल मे जब शरीर के विष उखडकर खून मे शामिल हो जाते है, तो तबीयत कुछ खराब-सी हो जाती है। नीद भी कम आती है। दु स्वप्न आते है। सिर कुछ भारी हो जाता है। थोड़ी-बहुत कमजोरी भी अनुभव होने लगती है। ऐसी हालत मे उपवास से भागना नही चाहिए। एनिमा लेने से ये सब विष निकल जाते है। ऐसी दशा मे यदि अनुभवी व्यक्ति की मदद होती है, तो रोगी आश्वस्त रहता है, घबराता नही।

जहा तक हो सके उपवास मे खुले बदन धूप और हवा मे बैठना चाहिए।

रूस के न्यूरोफिजियोलोजिस्ट अकेडेमिसियन पियोत्र अनोखिन का मत है कि अनुभवी की देख-रेख मे लम्बे उपवास का प्रयोग पेट के अल्सर, दमा, मधुमेह आदि से मुक्ति पाने के लिए काफी उपयोगी उपाय है। शरीर-रचना की दृष्टि से उपवास एक प्रकार से शॉक ट्रीटमेट जैसा प्रयोग है। उससे नाड़ीमडलीय क्रिया-कलाप बढ जाता है। उपवास के तीसरे दिन से त्वचा मे परिवर्तन दीखने लगता है, यह शरीर की प्रतिरक्षात्मक प्रक्रिया की अभिवृद्धि का द्योतक है। यह रोगी के पैथोलॉजिकल कॉम्प्लेक्स पर क्रियाशील होता है। इस दिशा मे रूस मे अनेक केन्द्रो पर कार्य हो रहा है। डॉ० अनोखिन का मत है कि चिकित्सा-क्षेत्र में उपवास मे बडी सभावनाए है। वे इस दिशा मे और अधिक काम करने की अपेक्षा मानते है।

भगवान् महावीर ने एक दिन के उपवास से लेकर छह महीने तक के उपवास को 'अनशन' सज्ञा दी है। 'अनशन' शब्द आजकल भूख-हड़ताल के चक्कर मे पडकर कुछ अवमत हो गया है। महावीर इसके सर्वथा विरुद्ध है। वे शरीर की

शुद्धि के लिए भी उपवास की उपयोगिता को सीमित करना नही चाहते। उनका लक्ष्य तो उससे बहुत ऊपर है। वे तो केवल आत्मदर्शन के लिए ही उपवास का समर्थन करते है। उन्होने स्वय दो दिन से लेकर छह महीने तक के लम्बे उपवास किये। वे उपवास-काल मे अपना अधिक समय आत्म-चिन्तन मे या ध्यान मे ही बिताते थे। यद्यपि उन्होने स्वय तो अपनी तपस्या बिना पानी चौविहार ही की है, पर उनकी तपोयात्रा मे पानी पीकर भी तपस्या करने का विधान है। इस अवस्था मे केवल गर्म पानी का ही उपयोग अधिक किया जाता है। गर्म पानी को कीटाणुरहित भी माना गया है।

ऊनोदरी-भिक्षाचारी

यदि कोई उपवास न कर सके तो उसके लिए उपवास करने की अनिवार्यता नही है। पर खाना खाते समय भी महावीर सावधानी की सूचना करते है। यद्यपि वे खाने का विधान नही करते, क्योकि खाने का विधान तो पराश्रितता है—पदार्थ-निर्भरता है। जब तक आदमी पराश्रित रहेगा तब तक पदार्थ-निरपेक्ष आनन्द का अनुभव नही कर सकता। यदि कोई खाये बिना न रह सके तो उसके लिए वे सावधानी की सूचनाए करते है। उनकी पहली सूचना है—भूख से ज्यादा मत खाना, बल्कि भूख से कुछ कम खाना। अपनी इस भावना को उन्होने ऊनोदरी तथ भिक्षाचारी शब्द से अभिव्यक्त किया है। ऊनोदरी अर्थात् कुछ कम खाना। भिक्षाचारी अर्थात् जो कुछ सहज भाव से मिल जाये उसे बिना स्वाद भावना के खा लेना। इस दृष्टि से वे नाश्ते को भी आवश्यक नही मानते। आज तो डॉ० एडवर्ड हूकर डेवी ने तो नाश्ते नही करने का एक आदोलन ही चला रखा है। उनका कहना है, नाश्ता स्वास्थ्य के नियमो के विपरीत है।

आधुनिक शरीरशास्त्र की दृष्टि से सामान्य स्वस्थ और साधारण श्रम करने वाले व्यक्ति को दिन भर मे २५०० कैलोरी ताप उत्पन्न करने वाले भोजन की आवश्यकता होती है। महावीर ने उसे ३२ ग्राम की सज्ञा दी है। व्यक्ति की क्षमता के अनुसार उन्होने उसमे कमी-बेसी का भी विधान किया है। पर मात्रा का यह विवेक मनुष्य का अपना होता है। जो व्यक्ति यह विवेक नही कर सकता, वह साधना के क्षेत्र मे प्रवेश नही कर सकता।

महात्मा गाधी ने अपनी 'स्वास्थ्य साधना' नाम की छोटी-सी पर महत्त्वपूर्ण पुस्तक मे लिखा है—पशु-पक्षियो का जीवन देखिए। वे कभी स्वाद के लिए नही खाते और न इतना अधिक ही खाते है कि पेट फटने लगे। वे केवल अपनी भूख मिटाने भर ही खाते है, जो कि उन्हे प्राकृतिक रूप से मिल जाता है। वे कुछ भी नही पकाते। क्या यह अच्छी बात है कि मनुष्य केवल पेट की उपासना

करे ? क्या यह अच्छी बात है कि मनुष्य सदा रोगो का शिकार बनता रहे ? वास्तव मे यदि मनुष्य भी प्रकृति-प्रदत्त वस्तुओ को उसी रूप मे खाये, भूख से अधिक न खाये, स्वाद के लिए न खाये, तो वह भी पशु-पक्षियो की तरह रोग-मुक्त रह सकता है।

आंध्र प्रदेश कृषि विश्वविद्यालय के डॉ० प्रो० सूर्यनारायण ने कहा है—यह बात बिलकुल सही है कि जिस व्यवित को अपने आपको स्वस्थ बनाये रखने की इच्छा है उसे जिह्वा का दास नही बनना चाहिए और न उसे अधाधुध नियत्रणहीन रूप मे खाते ही रहना चाहिए। जो व्यक्ति अपने शरीर पर अवाछित दबाव नही डालता है वह निश्चय ही रोगमुक्त रहता है। पूरे रूप मे शरीर को पोषण मिले इसके लिए यह आवश्यक है कि भूख के बिना न खाया जाये। भोजन ठूसते ही रहना मात्र उसका लक्ष्य नही होना चाहिए। दो भोजनो के बीच मे काफी समय का अन्तर रखते हुए थोडा कम खाना अच्छे स्वास्थ्य की गारटी है।

निश्चय ही उपरोक्त कथनो मे ऊनोदरी तथा भिक्षाचारी का समर्थन मिलता है। चिकित्सा के क्षेत्र मे शोधकार्य करने वाले वैज्ञानिको ने यह प्रदर्शित किया है कि जिन चूहो को थोड़े-थोडे अन्तर पर बिना सतुलन के खिलाया गया वे जल्दी मरे और जिन चूहो के दो भोजनो के बीच काफी अन्तर रखा गया और परिमित आहार दिया गया वे दीर्घजीवी रहे। यह बात मनुष्य के लिए भी सत्य है। अत. इस सम्बन्ध मे सावधानी बरतनी चाहिए कि भोजन इतना ही किया जाय कि थोड़ी भूख बाकी रहे।

लुई अहोगाफाल्स, ओहियो मे अपराधकर्मियो और भोजन के सम्बन्ध मे शोधकार्य प्रारम्भ किया गया है। वहा अपराधकर्मियो की जाच की जाती है कि वह 'हाइपर ग्लाईसीमिया'—खून मे शक्कर के रोग से ग्रस्त तो नही है। इससे ग्रस्त होने पर व्यक्ति मे चिडचिडापन आ जाता है। वह शकालु प्रवृत्ति का हो जाता है और यदा-कदा 'हाइपर ग्लाईसीमिया' जनित अपराधो मे प्रवृत्त हो जाता है, यथा मारपीट, यौन अपराध तथा कानून का उल्लघन आदि। ऐसे व्यक्तियो के भोजन मे परिवर्तन कर दिया जाये, मीठी चीजे तथा स्टार्च वाली चीजे बन्द कर दी जाये तो उसकी प्रवृत्तियो मे परिवर्तन हो जाता है। चीन के एक विख्यात दार्शनिक लिन्ड ताड ने बिलकुल सच कहा है—हमारा जीवन भगवान पर आश्रित नही है, वह हमारे रसोइयो पर आश्रित है।

रात्रि-भोजन का परिहार

भोजन के सम्बन्ध मे रात्रि-भोजन नही करना, यह भी महावीर की एक विशेष सूचना है। रात्रि-भोजन से अधकार मे बहुत सारे जीव-जन्तुओ की हिंसा की

सभावना तो होती ही है, पर इसके अतिरिक्त पाचन दृष्टि से भी इसकी अपनी उपयोगिता है। दिन रहने-रहते खाने मे सूरज की गर्मी का भोजन के पाचन पर गहरा प्रभाव पडता है। अच्छे पाचन के लिए मस्तिष्क क्रियाशील और सचेत रहना आवश्यक है तो अच्छी नीद के लिए खाली पेट रहना भी आवश्यक है। यह शरीर-विज्ञान के सम्वन्ध मे एक सर्वसम्मत नियम है। इस दृष्टि से दिन रहते-रहते खा लेना एक स्वास्थ्यकर नियम भी वन जाता है। जो लोग रात मे देर से भोजन करते है और फिर जल्दी सो जाते है, वे अपने शरीर के साथ जवरदस्ती करते है।

रस-परित्याग

इसके अतिरिक्त महावीर भोजन मे जिस एक वात पर और जोर देते है, वह है रस-परित्याग। रस-परित्याग का सामान्य अर्थ है दूध, दही, घी, चीनी, मिठाई तथा तेल—इन छह विकृतियो (विगयो) का परित्याग। विकृति शब्द प्रकृति का विलोम है। जब महावीर विकृति शब्द का प्रयोग करते है, तो निश्चय ही उनका सकेत प्रकृति की ओर है। प्राकृतिक भोजन सहज मन के लिए भी उत्तेजना-रहित है। वृत्तियो मे उत्तेजना न आये, इसके लिए वार-वार रुक्ष-प्रात, नीरस भोजन की याद दिलाते है। इसी दृष्टि से वे विकृतियो के परित्याग की वात कहते है। वे न केवल शरीर को उपचित ही करती है पर विकारो को भी जन्म देती है। इसीलिए वे कहते है—

'रसा पगामं न निसेवियव्वा।
भुत्ता-रसा दित्तिकरा नराण
दित्त च कामा समभिद्दवति,
दुम जहा साउफल व पक्खी॥'

प्रकाम रसो का निषेवन मत करो। वे मनुष्य के लिए उत्तेजक है। वे मनुष्य को उसी तरह से उपद्रुत करते है जैसे मधुर फलोवाले वृक्ष को पक्षी।

पर इसका यह मतलव नही कि वे एकदम नीरस आहार के समर्थक तथा रसपूर्ण आहार के विरोधी है। आवश्यकतानुसार रसपूर्ण आहार के लिए भी उनका निषेध नही है। पर व्यक्ति को उसके सतुलन का वोध अवश्य होना चाहिए।

कुछ लोगो का ख्याल है कि स्वास्थ्य की रक्षा के लिए घी, दूध आदि की आवश्यकता है। संतुलित भोजन की दृष्टि से एक हद तक इनकी आवश्यकता हो सकती है। पर दीर्घ और स्वस्थ जीवन पर शोध से इस वात का पता चला है कि उनका मुख्य राज सीधा-सादा भोजन ही है। आज दक्षिणी अमेरिका की

पहाडियो तथा घाटियो मे, जॉर्जिया आदि के गावो मे अनेक शतायु व्यक्ति मिलते है। उनसे वातचीत करने पर यह पाया गया है कि उनके जीवन का रहस्य सीधा-सादा भोजन तथा तनावमुक्त जीवन है। यद्यपि वे यह नही वता पाते कि उनकी उम्र कितनी है पर न्यूयार्क अकादमी ऑफ मेडिसिन के डायरेक्टर ने अनेक लोगो की शताधिक आयु को स्वीकार किया है।

नयी शोधो के आधार पर शरीर-शास्त्र मे यह स्थिर हो गया है कि अधिक चिकनाई का प्रयोग स्वास्थ्य के लिए खतरनाक है। यदि चिकनाई ४० प्रतिशत कैलोरी से ज्यादा हो जाए तो मोटापा, हृदय-रोग, उच्च रक्तचाप, मधुमेह आदि वीमारियो की आशका वढ जाती है। कई अध्ययनो से यह भी पता चला है कि भोजन मे अधिक चिकनाई होने तथा सीने और आतो के कैंसर मे पारस्परिक सम्बन्ध है। सेचुरेटेड चिकनाई का अधिक प्रयोग भी उचित नही है।

लन्दन टाइम्स (१५ अगस्त, १९७३) मे प्रकाशित वृत्तान्त भी भोजन के सम्वन्ध मे इसी तथ्य को प्रमाणित करता है। उसमे कहा गया है—म्युनिख मे जव ओलम्पिक खेल समाप्त हुए तो उसके वाद एक ७२ वर्ष का व्यक्ति ३००० मीटर की दौड दौडा। उसी समय एक १०६ वर्ष की उम्र के व्यक्ति ने अपनी वर्षगांठ के अवसर पर १०० गज की तेज दौड लगायी। वह व्यक्ति रोज ६ मील दौड़ता है। उनसे जव उनके स्वास्थ्य का राज पूछा गया तो उन्होने वताया —सीधा-सादा भोजन ही इसका मुख्य राज है।

इसी प्रकार चीनी के विपय मे 'साइन्स रिपोर्ट' अगस्त, १९७६ मे श्री आई० रघुनाथन ने लिखा है—इस शताव्दी के प्रारम्भ से हमारे भोजन की आदतो मे वडे महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए है। पहले कार्वोहाइड्रेट पदार्थ शक्ति के मुख्य स्रोत थे। आज उनका स्थान चीनी ने लिया है। इसके पीछे कारण रूप हल्के पेयो (soft drinks) मे लोगो की रुचि का अत्यधिक वढना है। चीनी की खपत के इस रूप मे वढने के गम्भीर परिणाम हो सकने है। इसमे सवसे प्रमुख वात तो यह है कि चीनी मे पोपण-तत्त्व नगण्य-सा है। फिर भी यह पोपक आहारो पर हावी होती जा रही है।···आज औसत अमेरिका के भोजन मे ४० प्रतिशत कैलोरी चीनी से प्राप्त होती है। पर हल्के पेय, तैयार मिठाइयो आदि का प्रयोग कम करके उसे मात्र १५ प्रतिशत कैलोरी चीनी से प्राप्त करनी चाहिए।

हमारे शरीर को जो शर्करा (ग्लुकोज) चाहिए वह वाजार मे मिलनेवाली चीनी मे वहुत कम है। दानेदार शर्करा मे जो मिठास होती है वह हमारे शरीर मे सीधे काम नहीं आती। उसे पचाने के लिए उल्टा हमारे शरीर-तन्त्र को काम करना पडता है। इसीलिए वह लाभ की अपेक्षा हानि ही अधिक करती है।

तली हुई चीजे भी हमारे पाचन-तन्त्र को क्षति पहुचाती हैं। वहुत सारे लोग वहुत सारी चीजो को केवल स्वाद की दृष्टि से ही खाते है। मिर्च-मसाले,

हींग आदि ऐसी अनेक चीजे आज आदमी के भोजन मे प्रविष्ट हो गयी है जिनकी शरीर के लिए उतनी आवश्यकता नही है, जितनी जीभ के लिए है। दाले, शक्कर, घी का उपयोग कम-से-कम किया जाना उत्तम स्वास्थ्य के लिए जरूरी है। स्वास्थ्यपूर्ण भोजन मे रासायनिक खादो का भी निषेध है। जिस अन्न मे समस्त खनिज-लवण स्वाभाविक हो वही पूर्ण स्वास्थ्यप्रद भोजन है। नमक का ज्यादा प्रयोग भी स्वास्थ्य को कमजोर बनाता है। इस सलाह के पीछे मुख्य आधार यह है कि नमक कुछ लोगो के रक्तचाप को बढा देता है। लगभग २० प्रतिशत लोग जिनमे बच्चे भी शामिल है, उच्च रक्तचाप से पीडित रहते हैं। कुछ अध्ययनो से यह सिद्ध हुआ है कि अधिक नमक खाने से हृदय रोग, पेट के कैंसर, सिरदर्द आदि की आशका रहती है। तीन ग्राम नमक से ज्यादा नमक मनुष्य के लिए अनावश्यक है और इतना नमक तो खाद्य-पदार्थो मे बिना अतिरिक्त नमक मिलाये ही प्राप्त हो जाता है।

मद्यपान

मद्यपान और मासाहार का तो महावीर तीव्र प्रतिरोध करते हैं। वह केवल अहिंसा की दृष्टि से ही नही अपितु उससे मनुष्य की वृत्तिया भी बिगडती है। इसमे कोई सदेह नही है कि आज ये दोनो ही प्रवृत्तिया बढ रही है पर जिस मात्रा मे ये प्रवृत्तिया बढ रही हैं उसी मात्रा मे समस्याए भी बढ रही है। दी ओहियो स्टेट युनिवर्सिटी के श्री वॉल्टर सी० रेक्लेस ने अपनी पुस्तक 'The Crime Problem' मे मद्यपान पर सागोपाग अध्ययन प्रस्तुत किया है। उन्होंने कहा है—अपराध से तीन बाते मुख्य रूप से जुडी हुई है—शराब पीना, नशीली दवाइया लेना तथा अस्वाभाविक यौन-भावना। इनके साथ वेश्या-गमन, जुआ, परिवार का बिखराव, गर्भपात, भिखारीपन आदि अनेक समस्याए भी जुडी हुई है पर कदाचित् शराब इन सारी समस्याओ से प्रमुख रूप से जुडी हुई है।

यद्यपि यह तो सम्भव नही है कि अपराध के लिए केवल शराब को ही उत्तरदायी ठहरा दिया जाए। पर फिर भी उसमे शराब का एक महत्त्वपूर्ण भाग है, इसमे कोई सदेह नही है। यह कहना भी उचित नही होगा कि हर शराबी अपराधी ही होता है। पर यह सच है कि शराब और अराजकता के बीच एक गहरा सम्बन्ध है। शराबी आदमी अपने सामाजिक दायित्व के प्रति उदासीन रहता है। वह औसत आदमी की तुलना मे ज्यादा अपराध करता है।

अमेरिका की एक जाच समिति ने १२ राज्यो के १७ कारागारो और सुधार-गृहो मे १३४०२ बदियो का परीक्षण कर यह तथ्य निकाला है कि उनमे से ५० प्रतिशत से अधिक अपराध सयमहीनता के कारण किये गये थे। और यह

सयमहीनता सीधी शराब से जुडी हुई थी।

स्टैनफोर्ड विश्वविद्यालय के प्रोफेसर डॉ० जोसेफ केहन की पुस्तक 'Behind the sins of murder' के अनुसार हत्या के आधे केस केवल शराब के कारण होते है।

सिटी कोर्ट के न्यायाधीश श्री ग्रेलिनर ने अपने सामने आये १०००० मामलो की छानबीन करने के वाद बताया है कि उनका ६२ प्रतिशत कारण शराब ही था। उनके हिसाव से अपराधो की वर्तमान लहर को मद्यसार से ही वढावा मिल रहा है।

न्यायाधीश श्री विलियम आर. मैके ने नेशनल वायस (६ मार्च, १९४७) मे लिखा था—दस वर्ष तक प्रॉसिक्युटिंग एटॉर्नी एव इतनो ही अवधि तक म्युनिसिपल एव सुप्रीम कोर्ट-पीठो का काम करने के उपरान्त मेरा सुविचारित मत है कि जो भी व्यक्ति फौजदारी अदालत के सम्मुख सुनवाई के लिए उपस्थित होते है उनमे से ६० प्रतिशत मादक शराव के अत्यधिक उपयोग के कारण प्रत्यक्ष रूप से स्वय ही ऐसे मामलो मे लिप्त होते है। मैने अपने से कही अधिक योग्यता-प्राप्त अनुभवी लोगो से वात की है, वे भी मेरे इस निष्कर्ष से सहमत है।

कुयाहोगा काउन्टी, ओहियो ने क्वीनलैंड मे विस्तृत जाच करने के वाद अपने प्रतिवेदन मे कहा है—हमारी कार्यविधि मे हमे डकैतियो के मामलो के सम्वन्ध मे जो विपुल साक्षिया पेश की गयी, उनसे प्रतिध्वनित होता है कि शराव का उसमे महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह ही वह स्थान है जहा डकैतियो का उद्भव होता है। आग लगाना, सेध मारना, यौन अपराध, गोली चलाना, छुरा भौकना, नर-हत्या, धोखाधडी, गोपनीय हथियार रखना, मारपीट एव वाहन सम्वन्धी कानून का उल्लघन भी उसी मे शामिल है।

न्यू जर्सी राज्य के मद्यसारयुक्त पेय नियंत्रण राज्य आयुक्त फेडरिक वर्नेस्ट ने अपने भाषण मे कहा था—अनादिकाल से पुलिस की चार समस्याए रही है—अनैतिकता, जुआ, मादक द्रव्य और शराव।

लॉस एजिल्स काउण्टी के सुपीरियर कोर्ट के जज विलियम आर० मैके ने कहा है—न्यायालय मे पेश होनेवाले अपराध के १० मामलो मे ९ ऐसे होते हैं जो प्रत्यक्षत शराव के अधाधुन्ध उपयोग की देन होते है। उनके इस ववतव्य को जव कुछ लोगो ने चुनौती दी तो उन्होने और गहरा अध्ययन किया। उन्होने कहा—और अधिक जाच-पडताल करने के वाद अव मुझे पक्का विश्वास हो गया है कि मैंने पहले जो कुछ कहा था वह विद्यमान स्थिति का सर्वश्रेष्ठ चित्रण है।

मद्यपान के अध्ययन मे नवीन प्रवृत्तियो के लेखक ए० आई० मालकोइम ने अपनी रिपोर्ट मे वताया है—सामान्य जनसख्या की तुलना मे मद्यपो की आत्म-हत्या की दर ५८ गुना अधिक होती है। अमेरिका मे अपराधिता के अध्ययन मे

चित्रित आकडो मे वताया गया है—१९६७ मे पियक्कड स्थिति मे वदी वनाये गए लोगो की सख्या १३९६२८० थी। सुरापान कर वाहन चलाने के आरोप मे वदी वनाये गए व्यक्तियो की सख्या २४८९१२ थी, सुरापान के प्रभाव से अनियन्त्रित व्यवहार करनेवाले वदियो की सख्या ४९५७८४ थी। कुल मिलाकर २१,४०,९७६ की यह कुल सख्या इस वात का प्रमाण है कि वहा की कुल वदियो की सख्या मे एक-तिहाई से लेकर आधी सख्या मद्यपान से सम्वन्धित लोगो की थी।

कोलम्विया, ओहियो मे ६०७ व्यक्तियो मे से प्रत्येक, १२ महापातको मे से एक महापातक के कथित तौर पर किये जाने के तत्काल वाद या उन्हे करते हुए १८ वर्ष या इससे ऊपर की आयु वाले लोगो का मूत्र लेकर उनका रासायनिक परीक्षण करने के वाद श्री सूपे ने पाया है कि उनमे से ७१.२ प्रतिशत वदी कथित अपराध के समय सुरापान कर रहे थे। अपनी स्थापना का व्यौरा देते हुए आगे उन्होने कहा है—यौन अपराधो मे ६० प्रतिशत, चोरी-चकारी मे ६५ प्रतिशत, जालसाजी मे ६६ प्रतिशत, ऑटोचोरी मे ६८ प्रतिशत, वलात्कार मे ३९ प्रतिशत, सेंधमारी मे ७० प्रतिशत, लूटमार मे ७४ प्रतिशत, हत्याओ मे ७९ प्रतिशत, जान-वूझकर गोली चलाने मे ८३ प्रतिशत, सामान्य प्रहार मे ८५ प्रतिशत, हथियार सम्वन्धी अपराधो मे ८५ प्रतिशत, जेव काटने के ९३ प्रतिशत अपराधो मे शराव का हाथ है।

इसी प्रकार फिल्प, लिप्सकोम्व लेवेन, श्वार्त्ज पेटस्टरमैक एव वेन्ड्रे ने सयुक्त रूप से कैलिफोर्निया मे कारागृह मे भर्ती किये गए महापातको का अध्ययन करके वताया है—यौन-अपराधो मे ६० प्रतिशत, सामान्य चोरी मे ४०.३ प्रतिशत, जालसाजी मे ५६ प्रतिशत, ऑटो आदि की चोरी मे ६०.९ प्रतिशत, वलात्कार मे ६०.४ प्रतिशत, सेंधमारी मे ५२ प्रतिशत, लूटमार मे ६१.२ प्रतिशत, हत्या व नर-संहार मे ७० ३ प्रतिशत, घातक प्रहार मे ६५.२ प्रतिशत लोग ऐसे थे जो शरावी थे।

नार्थ वेस्टर्न युनिवर्सिटी की अपराध कानून पत्रिका मे ८८२ व्यक्तियो पर परीक्षण करने के वाद वलात्कार मे ५० प्रतिशत, सगीन अपराधपूर्ण प्रहार मे ४८ प्रतिशत, काटने मे ९२ प्रतिशत, हथियार छिपाने मे ९२ प्रतिशत, हत्या मे ८३ प्रतिशत, गोली चलाने मे ८२ प्रतिशत, लूट मे ७२ प्रतिशत, सेंधमारी मे ७१ प्रतिशत, चोरी मे ७३ प्रतिशत, ऑटोचोरी मे ७० प्रतिशत, जालसाजी मे ६० प्रतिशत, औसतन ७३.७५ प्रतिशत व्यक्ति शरावी होने के समाचार छापे है।

वाशिगटन राजकीय पेन्टिन्शियरी मे प्रविष्ट हुए लोगो के सर्वेक्षण से विदित हुआ है कि ६० प्रतिशत अपराधो के मूल मे शराव ही एक प्रमुख कारण था।

'लिमन' नामक पत्रिका मे २३३ जजो के अनुमानो का सर्वेक्षण करने के वाद

पाया गया कि गिरफ्तार किए व्यक्तियो मे से ६३ प्रतिशत का शराव से लगाव रहा है।

एक अलगहन वैज्ञानिक अनुसधान के उपरान्त अपराधियो के रक्त-परीक्षण के वाद पाया गया है कि ७१ प्रतिशत व्यक्ति सुरापान किए हुए थे। उनका व्यौरा देते हुए कहा गया है—यौन अपराध मे ६० प्रतिशत, चोरी मे ६८ प्रतिशत, मोटर आदि वाहनो की चोरी मे ६८ प्रतिशत, वलात्कार मे ६८ प्रतिशत, सेधमारी मे ६० प्रतिशत, लूटमार मे ६८ प्रतिशत, प्रहार-अपराधो मे ८५ प्रतिशत, गोली चलाने मे ८३ तथा तेज धार वाले हथियारो के प्रहार मे ८५ प्रतिशत का कारण मद्यपान है।

ऊपर के अध्ययनो मे यद्यपि प्रतिशतो मे थोडा अन्तर है, वास्तव मे इन्हे स्पष्ट करने के लिए ही ये आकडे प्रस्तुत किये गये है। पर इन सव से एक वात निर्विवाद रूप से उभरती है कि मद्यपान और अपराध का चोली-दामन का सम्वन्ध है। सुरापान से आदमी क्रूर, क्रोधी एव प्रमादी वन जाता है। उसके लिए जीवन वहुत सस्ता हो जाता है। वह न केवल अपनी ही हानि कर लेता है अपितु दूसरो की हत्या करने मे भी उसे कोई सकोच नही रहता। जव कोई व्यक्ति शराव के नशे मे होता है तो वह सभी प्रकार के अपराध और विभिन्न स्तरो पर उत्तर-दायित्वहीन व्यवहार करने लगता है। कई जगह पर पाया गया है कि अन्य अपराधो से जितने व्यक्ति जेल जाते है, शराव के नशे मे धुत्त होकर जेल जाने वालो की सख्या उसमे ज्यादा है। डेविन्स ने कहा है—पीढियो से सुविज्ञ और निर्लिप्त व्यक्तियो ने इस तथ्य को व्यक्त किया है कि शराव ही अपराध का एकमात्र सवसे वडा कारण है।

अवैध गतिविधियो मे अनुरक्त व्यक्तियो मे शराव पीने के वाद मिथ्या साहस की भावना उद्भव होती है। ऐसे लोगो को भयानक काम करने के लिए शराव पिलाई जाती है। शराव ऐसे व्यक्तियो को भी उचित-अनुचित मे भेद-रेखा खीचने मे विवेकहीन वना देती है, जो उच्च सिद्धान्तो को मानने वाले होते है। मद्यपान के परिणामस्वरूप वे अपनी भावनाओ पर नियत्रण खो देते है। यदि वे मद्यपान नही करते तो कदापि अपराध नही करते, पर मद्यपान के वाद वे अपना आपा खो देते है। वास्तव मे वह सही और गलत मे विवेक न कर पाने के कारण होता है। ऐसी स्थिति की तुलना ढलान मे चलती हुई गाड़ी के ब्रेक फेल हो जाने से की जा सकती है।

यौन अपराधो एव व्यक्तिगत हिंसा के मामलो मे भी शराव को ही मुख्य प्रेरणा के रूप मे माना गया है। वेश्यावृत्ति एव मद्यपान के वीच गहन सम्वन्ध है। वालको के साथ यौन अपराध मे लिप्त होने वाले व्यक्ति प्राय सुरापायी होते है। वे जितनी मात्रा मे शराव अधिक पीते है, उसी मात्रा मे अपराध भी तीव्रता

से करते है ।

सुरापान को वैध कर देने का ही एक बडा अभिशाप वेश्यावृत्ति है । इसका सम्बन्ध अधिकतर मदिरालयो से है । क्योकि सडको पर घूमने वाले लोग अपना धन्धा चलाने के लिए सुरापान के स्थलो मे प्रवेश करते हैं । कतिपय मद्य प्रतिष्ठान तो मात्र कामवासना की पूर्ति के ही अड्डे होते हैं जहा वेश्याओ से सम्पर्क ही एकमात्र लक्ष्य होता है ।

जियोन हैराल्ड नामक समाचार-पत्र मे विशम हजरव्सेक ने लिखा है—मदिरालय अवाध स्वातन्त्र्य के दिनो की अपेक्षा हजारो गुणा अधिक विघातक और विनाशक सिद्ध हो रहे है । हमारे युवको को पथभ्रष्ट करने के लिए उपवन ही शराव के स्थल नही रह गये हैं, अपितु उनके साथ-साथ वेश्यालय भी सडको पर ही वस गये है । वेश्याओ के साथ शारीरिक स्वास्थ्य किस हद तक जुडा हुआ है, इसे वताने की आवश्यकता नही है । हजारो-हजारो ही नही, लाखो-करोडो लोग अपने गुप्त रोगो का उपहार वेश्यालयो से ही प्राप्त करते हे ।

विन्कोन्सिन राज्य विधानमण्डल ने १९१४ मे महिलाओ मे वेश्यावृत्ति आदि की जाच के लिए एक समिति नियुक्त की थी । उसने अपने प्रतिवेदन मे वताया है कि महिलाओ और युवतियो के पतन, मादक पेय, शराव और व्यावसायिक दुराचार के वीच एक गहन सम्बन्ध है। महिलाओ को शराव खजूर के उद्यानो, शरावगृहो, सैलूनो और नृत्यागारो से मिलती है। पहली वार के अपराध के वाद महिला के पतन की गति तीव्र हो जाती है ।

सभी विशेषज्ञ इस तथ्य से सहमत हे कि वाल-अपराध तथा अवैध सतानो की उपज का मुख्य अड्डा सुरागृह ही होते हैं । ९० प्रतिशत अवैध सन्ताने उन परिचयो का ही परिणाम होती है जो मदिरालयो मे होता है। सहायक काउन्टी अटॉर्नी रयुसिएन सेलवारे के अनुसार ऐसे मामले मे सम्वन्धित युवक-युवतियो की उम्र १६-२२ वर्ष के वीच की पायी गयी है। डॉ० हील ने कहा है—लघु मात्रा मे किया जाने वाला सुरापान भी किशोर युवतियो को चारित्रिक दृष्टि से गिरा देता है । अनेक खोजो से यह वात अत्यन्त स्पष्ट हो गयी है कि सुरापान की अवस्था मे महिलाए अपना विवेक खो देती है ।

तलाक सम्वन्धी मामलो के सम्वन्ध मे अपने अनुभव वताते हुए श्री मैके ने कहा है—दिन-प्रतिदिन पति-पत्नी मे मतभेद से पैदा होने वाली कतार मेरे समक्ष आती है, उसमे ७५ प्रतिशत मामलो मे शराव ने ही झझट प्रारम्भ करवाया है जिसने तलाक के लिए कार्यवाही को आवश्यक वना दिया । मै यह देखकर विशेष रूप से द्रवित हुआ हू कि महिलाओ मे भी सुरापान की लत वढती जा रही है । वस्तुत यह प्रत्येक दृष्टि से नैतिक पराभव की ही परिचायक है। इससे वालको को भी अपराध करने का प्रत्यक्ष वढावा मिलता है क्योकि शरावी माताए वच्चो

पाया गया कि गिरफ्तार किए व्यक्तियो मे से ६३ प्रतिशत का शराव से लगाव रहा है।

एक अलगहन वैज्ञानिक अनुसधान के उपरान्त अपराधियो के रक्त-परीक्षण के वाद पाया गया है कि ७१ प्रतिशत व्यक्ति सुरापान किए हुए थे। उनका व्यौरा देते हुए कहा गया है—यौन अपराध मे ६० प्रतिशत, चोरी मे ६८ प्रतिशत, मोटर आदि वाहनो की चोरी मे ६८ प्रतिशत, वलात्कार मे ६८ प्रतिशत, सेधमारी मे ६० प्रतिशत, लूटमार मे ६८ प्रतिशत, प्रहार-अपराधो मे ८५ प्रतिशत, गोली चलाने मे ८३ तथा तेज धार वाले हथियारो के प्रहार मे ८५ प्रतिशत का कारण मद्यपान है।

ऊपर के अध्ययनो मे यद्यपि प्रतिशतो मे थोडा अन्तर है, वास्तव मे इन्हे स्पष्ट करने के लिए ही ये आकडे प्रस्तुत किये गये है। पर इन सव से एक वात निर्विवाद रूप से उभरती है कि मद्यपान और अपराध का चोली-दामन का सम्वन्ध है। सुरापान से आदमी क्रूर, क्रोधी एव प्रमादी वन जाता है। उसके लिए जीवन वहुत सस्ता हो जाता है। वह न केवल अपनी ही हानि कर लेता है अपितु दूसरो की हत्या करने मे भी उसे कोई सकोच नही रहता। जव कोई व्यक्ति शराव के नशे मे होता है तो वह सभी प्रकार के अपराध और विभिन्न स्तरो पर उत्तर-दायित्वहीन व्यवहार करने लगता है। कई जगह पर पाया गया है कि अन्य अपराधो से जितने व्यक्ति जेल जाते है, शराव के नशे मे धुत्त होकर जेल जाने वालो की सख्या उससे ज्यादा है। डेविन्स ने कहा है—पीढियो से सुविज्ञ और निर्लिप्त व्यक्तियो ने इस तथ्य को व्यक्त किया है कि शराव ही अपराध का एकमात्र सवसे वडा कारण है।

अवैध गतिविधियो मे अनुरक्त व्यक्तियो मे शराव पीने के वाद मिथ्या साहस की भावना उद्भव होती है। ऐसे लोगो को भयानक काम करने के लिए शराव पिलाई जाती है। शराव ऐसे व्यक्तियो को भी उचित-अनुचित मे भेद-रेखा खीचने मे विवेकहीन वना देती है, जो उच्च सिद्धान्तो को मानने वाले होते है। मद्यपान के परिणामस्वरूप वे अपनी भावनाओ पर नियत्रण खो देते है। यदि वे मद्यपान नही करते तो कदापि अपराध नही करते, पर मद्यपान के वाद वे अपना आपा खो देते है। वास्तव मे वह सही और गलत मे विवेक न कर पाने के कारण होता है। ऐसी स्थिति की तुलना ढलान मे चलती हुई गाडी के ब्रेक फेल हो जाने से की जा सकती है।

यौन अपराधो एव व्यक्तिगत हिंसा के मामलो मे भी शराव को ही मुख्य प्रेरणा के रूप मे माना गया है। वेश्यावृत्ति एव मद्यपान के वीच गहन सम्वन्ध है। वालको के साथ यौन अपराध मे लिप्त होने वाले व्यक्ति प्राय. सुरापायी होते है। वे जितनी मात्रा मे शराव अधिक पीते है, उसी मात्रा मे अपराध भी तीव्रता

से करते है ।

सुरापान को वैध कर देने का ही एक वडा अभिशाप वेश्यावृत्ति है । इसका सम्वन्ध अधिकतर मदिरालयो से है । क्योकि सडको पर घूमने वाले लोग अपना धन्धा चलाने के लिए सुरापान के स्थलो मे प्रवेश करते है । कतिपय मद्य प्रतिष्ठान तो मात्र कामवासना की पूर्ति के ही अड्डे होते है जहा वेश्याओ से सम्पर्क ही एकमात्र लक्ष्य होता है ।

जियोन हैराल्ड नामक समाचार-पत्र मे विशम हजरऽसेक ने लिखा है—मदिरालय अवाध स्वातन्त्र्य के दिनो की अपेक्षा हजारो गुणा अधिक विघातक और विनाशक सिद्ध हो रहे है । हमारे युवको को पथभ्रष्ट करने के लिए उपवन ही शराव के स्थल नही रह गये है, अपितु उनके साथ-साथ वेश्यालय भी सडको पर ही वस गये है । वेश्याओ के साथ शारीरिक स्वास्थ्य किस हद तक जुडा हुआ है, इसे वताने की आवश्यकता नही है । हजारो-हजारो ही नही, लाखो-करोड़ो लोग अपने गुप्त रोगो का उपहार वेश्यालयो से ही प्राप्त करते है ।

विन्कोन्सिन राज्य विधानमण्डल ने १९१४ मे महिलाओ मे वेश्यावृत्ति आदि की जाच के लिए एक समिति नियुक्त की थी । उसने अपने प्रतिवेदन मे वताया है कि महिलाओ और युवतियो के पतन, मादक पेय, शराव और व्यावसायिक दुराचार के वीच एक गहन सम्वन्ध है । महिलाओ को शराव खजूर के उद्यानो, शरावगृहो, सैलूनो और नृत्यागारो से मिलती है । पहली वार के अपराध के वाद महिला के पतन की गति तीव्र हो जाती है ।

सभी विशेषज्ञ इस तथ्य से सहमत है कि वाल-अपराध तथा अवैध सतानो की उपज का मुख्य अड्डा सुरागृह ही होते है । ९० प्रतिशत अवैध सन्ताने उन परिचयो का ही परिणाम होती है जो मदिरालयो मे होता है । सहायक काउन्टी अटॉर्नी ल्युसिएन सेलवारे के अनुसार ऐसे मामले से सम्वन्धित युवक-युवतियो की उम्र १६-२२ वर्ष के वीच की पायी गयी है । डॉ० हीले ने कहा है—लघु मात्रा मे किया जाने वाला सुरापान भी किशोर युवतियो को चारित्रिक दृष्टि से गिरा देता है । अनेक खोजो से यह वात अत्यन्त स्पष्ट हो गयी है कि सुरापान की अवस्था मे महिलाए अपना विवेक खो देती है ।

तलाक सम्वन्धी मामलो के सम्वन्ध मे अपने अनुभव वताते हुए श्री मैके ने कहा है—दिन-प्रतिदिन पति-पत्नी मे मतभेद से पैदा होने वाली कतार मेरे समक्ष आती है, उसमे ७५ प्रतिशत मामलो मे शराव ने ही झझट प्रारम्भ करवाया है जिसने तलाक के लिए कार्यवाही को आवश्यक वना दिया । मै यह देखकर विशेप रूप से द्रवित हुआ हू कि महिलाओ मे भी सुरापान की लत वढती जा रही है । वस्तुत. यह प्रत्येक दृष्टि से नैतिक पराभव की ही परिचायक है । इससे वालको को भी अपराध करने का प्रत्यक्ष वढावा मिलता है, क्योकि शरावी माताए वच्चो

के प्रति उपेक्षाशील हो जाती है। उनका समय मदिरालय के चक्कर लगाने मे ही बीतने लगता है।

अब यह बात स्पष्ट हो गयी है कि गर्भवती नारी यदि अत्यधिक शराब पिये तो गर्भस्थ बच्चे मे विकृति आ सकती है। यह बात केवल अत्यधिक शराब पीने वाली महिलाओ पर ही लागू नही होती अपितु कम मात्रा मे कभी-कभी दिन मे एक-दो बार कडी शराब पीने वाली महिलाओ पर भी लागू होती है। अमेरिका मे यू०एस०नेशनल इस्टीट्यूट आॅफ अल्कोहलीक अव्यूज एण्ड अल्कोहलिज्म ने अपनी शोध मे बताया है—प्रतिदिन एक-दो औस विशुद्ध अल्कोहल यदि गर्भवती नारी लेती है तो उसके बच्चे के विकास मे असामान्यता आ जाती है या जन्मजात विकृति आ जाती है। अनुमान है कि अमेरिका मे स्कूल मे पढने वाले ५० से ७० लाख बच्चो मे बुद्धि सम्बन्धी कोई-न-कोई विकार है। शोध करने पर पता चला है कि उनकी माताए गर्भावस्था मे शराब पीती थी, क्योकि शराब मा के रक्त मे पहुचकर गर्भगत बच्चे की रक्तधारा मे मिल जाती है। जब मा नशे की हालत मे होती है तो गर्भावस्था मे बच्चा भी नशे मे हो जाता है। यह स्थिति उसके लिए बडी भयानक होती है, क्योकि उसके यकृत का पूरा-पूरा विकास नही हुआ होता। वयस्क आदमी का यकृत २८ मि०ली०शराब का उपापचय एक घटे मे कर सकता है। भ्रूण का अविकसित यकृत इस कार्य को बडी धीमी गति से कर पाता है। अतः बच्चे तक पहुचने वाला अल्कोहल गर्भनाल मे अपविस्तृत हो जाता है। जब मा के रक्त मे अल्कोहल की मात्रा नीचे उतरेगी तभी वह बच्चे के उस अतिरिक्त अल्कोहल को वापस ले सकेगी। अत. मा यदि २८ मि० ली० से अधिक शराब पीती है तो असहाय बच्चे को अति दीर्घकाल तक उसे अपने रक्त मे रोके रखना पडता है। पर मा यदि पीती ही जाए तो बच्चे मे बडी तीव्र प्रतिक्रिया निश्चय ही होगी।

अभी तक यह बताना कठिन है कि किस काल मे गर्भावस्था मे शराब का दुष्प्रभाव सबसे अधिक होता है। पर इतना निश्चित है कि यदि मा की इच्छा हो कि उसका बच्चा स्वस्थ हो, उसका कद छोटा न हो, चेहरा विकृत न हो, आखे छोटी न हों, नाक का ऊपरी हिस्सा दबा हुआ न हो, हृदय तथा फुस्फुस निर्दोष हो, हाथ-पैर कुरूप न हो, मस्तिष्क अधिक मोटा न हो, उसे रक्तचाप न हो, स्नायु-दुर्बलता न हो तो उसे शराब से दूर से ही नमस्कार करना चाहिए। इतना ही नही, मद्यपायी माताओ के बच्चे प्राय: मर जाते है। जीवित रह जाए तो उनका वजन कम होता है।

बाल-अपराध

मैके, ब्लैकर, डेमोन और कैले ने अपने-अपने अध्ययन से यह निष्कर्ष निकाला है

कि वाल-अपराधो और सुरापान का गहन सम्वन्ध है।

१९६५ मे कैलिफोर्निया के राजकीय वाल सुधारगृहो मे प्रविष्ट ६०,१४७ वालको का अध्ययन कर श्री रिचार्ड ने पता लगाया है कि उनमे से २० प्रतिशत का अपराधो से सम्वन्ध रहा है। उनमे से अनेक मद्यपान के आदी थे।

१८ अप्रैल, १९६८ के रूस के प्रमुख समाचार-पत्र 'प्रावदा' से पता लगता है कि रूस मे भी वच्चो मे मद्यपान की आदत वढ रही है। १४ से १६ वर्ष की आयु के अनेक किशोरो द्वारा किये गये अपराधो का एकमात्र कारण शराव पीना ही था। उसे पीने के लिए उन्होने चोरी की और पुन. पीने के लिए पुन चोरी करनी पडी। फिर तो उनके जीवन मे यह एक चक्र ही वन गया।

उजवेक सुप्रीम कोर्ट के एक वरिष्ठ वकील श्री वेलन्सिको ने इजवेस्तिया (१७ अप्रैल, १९६९) मे लिखे अपने लेख मे वालको मे वोडका (शराव) के हानिकारक प्रभावो का उल्लेख करते हुए लिखा था—वाल-अपराधियो की कॉलोनी मे रहने वाले ९० प्रतिशत वच्चो ने अपनी गिरफ्तारी से पूर्व मद्यपान किया था। १४-१५ वर्ष की उम्र मे ही उनकी धारणा वन गयी कि शराव पीना कोई असाधारण वात नही है।

'लिसन' पत्रिका के सम्पादक जे० ए० वकवाल्टर ने वाशिंगटन राजकीय पन्टिन्शियरी मे रखे गये २०० वच्चो का अध्ययन कर यह निष्कर्ष निकाला है कि उनमे १८९ मद्यपायी थे, १४ ऐसे थे जिन्होने अल्पवयस्कता मे ही सुरापान शुरू कर दिया था, १२० ऐसे थे जिन्होने अपराध करने से ठीक पहले सुरापान किया था, ९९ का सम्वन्ध ऐसे परिवारो से था जो विश्रृंखलित हो गये थे तथा ७६ परिवार ऐसे थे जो तलाक से पीडित थे।

हैवलॉक इलिस ने अपनी पुस्तक 'The Criminal' मे कहा है—माता-पिता मे से किसी भी एक का पियक्कड होना वालक को अपराधी वनाने की दृष्टि से सर्वाधिक प्रभावी कारण है।

इतालवी न्यायविद एव अपराध-शास्त्र-विज्ञाता लोम्व्रोसो ने वताया है कि जिन दिनो मे शराव ज्यादा पी जाती है वे दिन अपराधो की दृष्टि से भी विशेप होते है। मदिरालय वह स्थान है जहा साथी मिलने आसान हैं। वहा न केवल अपराधो की योजना ही वनती हे अपितु वे अपव्यय के खास स्थान है। जुआ इत्यादि अनेक दुर्गुणो का प्रमुख प्रेरणा-स्थल मदिरालय ही है।

शराव और स्वास्थ्य

एक वार हम दर्शन और तर्क को छोड़ दे, नैतिकता और समाज-व्यवस्था को भी भूल जाये तो भी शराव मनुष्य के स्वय के स्वास्थ्य के लिए कितनी भयानक है,

इस पर जरा ध्यान दे ।

शराब शरीर और मन पर कितने भयकर प्रभाव डालती है, इसकी जानकारी के लिए चिकित्सा व्यवस्था मे लगे लोगो, वैज्ञानिको, मनोवैज्ञानिको, मनोरोग-विशेषज्ञो, शरीरक्रिया औषधि विज्ञान-वेत्ताओ की राय महत्त्वपूर्ण होती है। इस दृष्टि से अमेरिका मे आयोजित मानस-चिकित्सक और नाड़ी-तन्त्र विशेषज्ञो के राष्ट्रीय सम्मेलन का प्रस्ताव अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। उन्होने कहा है—इस सम्मेलन की सम्मति मे यह निश्चित रूप से सिद्ध हो चुका है कि शरीर के भीतर ली गयी शराब मस्तिष्क और अन्य तन्तुओ के लिए विष के रूप मे काम करती है। इसके प्रभाव से प्रत्यक्ष रूप से पागलपन, मृगी, मन की दुर्बलता और अन्य इसी प्रकार की अनेक मानसिक बीमारिया आती है ।

स्ट्रासवर्ग मे आयोजित इण्टरनेशनल फिजीओलॉजिकल काग्रेस मे औषधि-निर्माण विभाग के डॉ० ओटटो श्मेइदरवर्ग ने अपने निवन्ध मे कहा था—शराब मपोरो फार्म और ईथर की तरह अवसादक है, पीनक पाने वाला है। इसके सम्पर्क से व्यक्ति के शरीर के प्रत्येक तन्तु की शक्ति निर्वल हो जाती है।

इग्लैण्ड मे पागलपन पर नियुक्त कमीशन की रिपोर्ट मे कहा गया है कि पागलपन के विपाक्त कारण की सूची मे शराब मुख्य है। सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवाओ के सर्जन जनरल डॉ० थॉमस पाईन ने भी कहा है—पागलपन का मुख्य कारण शराब है।

अल्कोहल एण्ड अल्कोहलिजम पुस्तक के पृष्ठ १४ पर लिखा है—अत्यधिक शराब पीने की वजह से प्रतिवर्ष कई मिलियन डालर खर्च हो जाते है। मानवीय कष्ट का मूल्य तो किसी प्रकार नही आका जा सकता ।

ह्विस्की, ब्राडी आदि शराब सम्बन्धी विशेष काढ़े हुए पेय जब पेट मे डाले जाते है तब जिगर, छोटी आत और छोटी नसो द्वारा मद्यसार शीघ्रता से रक्त की सहायता से शरीर के सब भागो मे पहुच जाता है। मुश्किल से ही कोई शराब वडी अतडियो तक पहुचती है। भोजन-रहित पेट मे अतडियो द्वारा मद्यसार को शीघ्रता से अपने मे खपा लेना असाधारण गति से होता है। १० से ३० मिनट के भीतर यह रक्त मे उच्चस्तर तक पहुच जाती है। जिस मात्रा मे शराब ली जाती है उसी मात्रा मे उसका परिणाम और यह हानि पहुचती है। प्रवल शराब का पेट के साथ सम्पर्क होने से वहा सूजन हो जाती है, जिससे पाचक-यत्रो को स्थिर रूप से हानि होती है। यह एक प्रकार का प्रवाहशील विष है जो जिगर, दिल और गुर्दों को क्षति पहुचाता है। इससे पेट मे दीर्घकालीन सूजन हो जाती है।

शराब का पेट पर जो सीधा उत्तेजक प्रभाव पड़ता है वह मुख्यत रक्त के जमा और सकुचित हो जाने का है। कभी-कभी इससे पेट मे फोडे हो जाते है।

प्रतिदिन आदतन शरीब पीने से पेट के अन्दर सूजन रहने लगती है। पुराने मद्यपायी वातनाडी शोथ, मस्तिष्क-ज्वर, चमडी फटने का रोग, रक्तत्यता आदि अनेक वीमारियो से घिर जाते है।

वैज्ञानिक खोजो से पता लगा है कि दीर्घकाल तक मद्य पीने से हृदय की नसे वेकार हो जाती है। इससे अनेक प्रकार के विकार प्रकट हो जाते है।

इसी प्रकार मद्यपान से अप्रत्यक्ष रूप से गुर्दे पर भी भारी प्रभाव पडता है। शरावी के मूल-अम्ल का निकलना कम हो जाता है, जिससे मूत्र के रक्तसारो मे कमी हो जाती है। उससे मेग्नेशियम की भी कमी हो जाती है।

नशीले पेय शराव आदि कैसर के भी मुख्य कारण है। उन समस्त देशो मे जहा शराव अधिक पी जाती है, कैसर का प्रसार अधिक है।

सवाल होता है—शराव से जव इतना नुकसान है तो लोग इसका प्रयोग क्यो करते है? इसका कारण यह है कि साधारण आदमी समझता है कि शराव पीने से वह चिन्ताओ से मुक्त हो जाता है। ऐमा केवल वीमार आदमी ही नही समझते है अपितु दिन भर की मेहनत से थका हुआ हर आदमी यही सोचता है। पर यह वात ध्यान रखने की है कि नशे से न तो शक्ति आती है और न उससे चिन्ताए मिटती है, अपितु नशे के वाद कार्यक्षमता तथा चिन्ताए और अधिक वढ जाती है।

अल्कोहल के लगातार मेवन से आदमी के शरीर मे अनेक वीमारिया घर कर लेती है। आखे जलने लगती है, मितली-सी आने लगती है, भूख खत्म हो जाती है, थकावट आने लगती है, पसीना ज्यादा छूटने लगता है, शरीर मे कपकपी शुरू हो जाती है। आदमी उसे दूर करने के लिए फिर ज्यादा शराव पीता है। परिणामत परेशानिया भी वढने लगती है। और आदमी एक दुश्चक्र मे उलझ जाता है।

सुप्रसिद्ध व्रिटिश सर्जन सर लाउडर व्रुटन ने कहा है—शराव धीरे-धीरे निर्णय को पगु वनाती है, उसका यह कार्य प्रथम जाम के साथ ही प्रारम्भ हो जाता है।

डॉ० क्वैनसैल का अभिमत है—मद्यसारयुक्त पेय की लघु मात्रा भी मूत्राशय की थैली की कार्य-प्रणाली मे भारी परिवर्तन कर सकती है। विचार को पगु वना सकती है, अनुभूति की स्वच्छता मे कमी तथा निर्णय लेने की शक्ति को घटा सकती है।

इटली के प्राध्यापक लोम्व्रोजो के निष्कर्ष के अनुसार शराव मानव जीवन को घटाने वाली प्रमुख चीजो मे एक है। मद्यपान करने वाला २० वर्ष की आयु वाला व्यक्ति १५ वर्ष और जिए जव कि न पीने वाला ४४ वर्ष जी

सकता है।

अनेक बीमा कम्पनियो ने शराब और मृत्यु-सम्बन्ध के बारे मे अनेक महत्त्वपूर्ण अध्ययन प्रस्तुत किये है। मेडिकल एक्एरिल मोर्टलरी इन्वेस्टिगेशन के केन्द्रीय ब्यूरो के अध्यक्ष ने २५ वर्षो तक २० लाख लोगो के जीवन-वृत्तो के सम्बन्ध मे एक जाच का परिणाम देते हुए कहा है—यह सुनिश्चित है कि मद्यपायियो की अपेक्षा मद्यपान न करने वाले ५० वर्ष अधिक जीते है।

कानेक्टीकट म्युच्युअल के अध्यक्ष जैकब ग्रीने का कथन है—मै इस बहु प्रचलित धारणा का विरोध करता हू कि बीयर हानिरहित है। यदि शराबमुक्त लोगो की मृत्यु-सख्या १०० है तो यदा-कदा पीने वालो की मृत्यु-सख्या १२२, सयमित पीने वालो की मृत्यु-सख्या १४२ तथा नियमित पीने वालो की मृत्यु-सख्या २१२ है।

इतना ही नही, शराब के धधे मे लिप्त व्यक्तियो की मृत्यु-दर भी बढ जाती है। गर्म लोहे का कार्य करने वाले स्टील फैक्टरी के कर्मचारियो की मृत्यु-सख्या एक लाख मे ११७ पायी गयी है जबकि होटलो, रेस्टोरेटो और क्लबो मे कार्यरत व्यक्तियो की मृत्यु-दर एक लाख मे १७८ पायी गयी है।

यह सब कुछ होते हुए भी आज मद्यपान का प्रवाह बढ रहा है। जहा पहले नशाबदी का कानून था वह समाप्त कर दिया गया है। इसके पीछे शराब-प्रसारको के व्यापक विज्ञापन अभियान एक मुख्य भूमिका निबाहते है। इससे लोगो पर मनोवैज्ञानिक असर होता है और मद्यपान के प्रति अनैतिकता की धारणा टूट गयी है। आज तो सुरापान सभ्य-समाज मे सामाजिक स्तर का परिचायक समझा जाने लगा है। उसके बिना अतिथि-सत्कार भी अधूरा समझा जाता है। विज्ञापन करने वाले लोग करोडो रुपये इस बात का प्रसार करने मे लगाते है कि सीमित मात्रा मे शराब पीना बुरा नही है। पर सीमित मात्रा मे मद्यपान ही अपरिमितता की ओर प्रथम पग है। इसका कभी-कभी उपयोग भी अतत. एक आदत बन जाती है। आज जो लोग भयकर पियक्कड है उन्होंने भी शराब पीना कभी-कभी पीने से ही शुरू किया होगा। प्रारम्भ मे उन्होने भी यही सोचा होगा कि सीमित मात्रा मे शराब पीते है या कभी-कभार पीते है। पर धीरे-धीरे उनके शरीर का ढाचा ही ऐसा बन जाता है कि वे पिये बिना रह ही नही सकते।

वैज्ञानिक साक्ष्य इस बात का समर्थन करती है कि अमेरिका मे सारी यातायात दुर्घटनाओ मे ५१ प्रतिशत का सम्बन्ध सीमित मात्रा मे शराब पिए हुए चालको या परिचालको से होता है। वास्तव मे सीमित मात्रा मे शराब पीने वाला किश्तो मे आत्महत्या करता है। शराब पीने मे सयम की बात सर्वथा आत्मवंचना है। ऐसे व्यक्ति कभी भी मद्यप नही बन सकते जो पहली बार

शराव पीने से इनकार कर देते है।

शराव पीने का प्रभाव ही यह होता है कि आदमी नही कहने का सामर्थ्य खो वैठता है। पहले जाम से ही उसकी नियत्रण-शक्ति चेतनाशून्य हो जाती है और वह अच्छे-वुरे मे भेद नही कर मकता। रक्त की धारा के माध्यम से जब शराव एक वार मस्तिष्क मे प्रविष्ट हो जाती है तो उसका प्रभाव आत्म-नियत्रण तथा निर्णय लेने की शक्ति पर हावी हो जाता है। इसलिए सीमित मद्यसारयुक्त पेयो का प्रयोग मात्र छलनामय सिद्धात है। सीमित मात्रा मे मद्यपान ही कभी न वुझने वाली शराव की शुरुआत देता है। इस दृष्टि से हल्की नशीली शराव का सेवन भी मद्यसार की आदत का निर्माण कर देता है। इसलिए इस दिशा मे वहुत सावधानी रखने की आवश्यकता है। भगवान् महावीर इस लुभावने आकर्षण तथा क्षणिक सुख के सर्वथा विरुद्ध है। वे आदमी को एक ऐसे सुख की राह दिखाते है जो अक्षय है।

शरीर-शक्ति के लिए शराव का प्रयोग करना न तो वुद्धिमानी है और न यह पौष्टिक खाद्य पदार्थ का स्थान ले सकती है। अल्कोहल मे कैलरीज तो होती है पर वह विटामिन, प्रोटीन, लोहा आदि पौष्टिक पदार्थो का स्थान नही ले सकती। वह तो वस एक चावुक मात्र है।

मद्यपायी की मनोदशा का चित्रण करते हुए वताया गया है—पहले वह मौन रहता है, फिर वाते आरम्भ करता है, तदुपरान्त वहस छेडता है और फिर विवाद पर उतारू हो जाता है। जव वाद-विवाद उग्र हो जाता है तो उस व्यक्ति मे स्वयभू होने की प्रवृत्ति उभरती है, फिर वह समझ नही पाता कि कौन क्या कह रहा है और फिर तो वह व्यक्ति नशे मे इतना धुत्त हो जाता है कि अपनी सुध-वुध ही खो वैठता है।

यदि हम थोडी-सी आखे उठाकर देखे तो हमे अपने आस-पास ऐसे अनेक उदाहरण मिल जायेगे जिनके कारण परिवार का परिवार क्षत-विक्षत हो जाता है। न्यायाधीश ए० ए० डावसन (टैक्सास) के आकलन के अनुसार यदि मादक शराव का पीना वन्द हो जाये तो दो-तिहाई न्यायालय समाप्त हो जाए। इसके साथ-साथ वर्तमान कानूनो को लागू करने मे जितनी राशि खर्च होती है उसमे भी ८५ प्रतिशत की वचत हो सकती है। आज करोडो-अरवो रुपये उन लोगो पर खर्च किए जाते है जो मद्यपान की चपेट मे आ जाते हे। अकेले अमेरिका मे २१ वर्ष की अवस्था से ऊपर के अपराधियो पर २९ मिलियन डालर खर्च होता है, जवकि इन अपराधो मे अधिकाश के मूल मे शराव ही होती है।

कुछ लोगो का तर्क है कि शराव पीना उनका अपना व्यक्तिगत मामला है। पर एक व्यक्ति का आचरण जव समाज को प्रभावित करने लग जाता है

तो व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की सीमा समाप्त हो जाती है। शराब पीना एक व्यक्तिगत मामला भले ही हो, आज यह एक सामाजिक रूप ले चुका है। थोडी-सी पी गयी शराब भी औद्योगिक उत्पादन की गति शिथिल कर देती है। मादकता लाने वाली शराब तो किसी भी आधुनिक फैक्टरी या कारखाने को नष्ट-भ्रष्ट कर सकती है। इसीलिए जेफरसन काउन्टी अलवाया के शेरिफ होस्ट मेकडोवेल का कहना है—मेरा सदैव विश्वास रहा कि यदि कोई व्यक्ति कहता है कि शराब पीना उसका अधिकार है तथा उसमे वाधा डालने का किसी को अधिकार नही है तो एक शेरिफ के तौर पर मै कह सकता हू कि इस मामले मे दखल देना एक नागरिक का परमपावन कर्तव्य है।

आज तो नशे की दृष्टि से शराब एक अकेली चीज नही रह गयी है अपितु भारत सरकार द्वारा स्थापित विशेषज्ञो की एक कमेटी ने अपनी रिपोर्ट 'ड्रग एब्यूज इन इडिया' मे नशीली चीजो के नाम इस प्रकार गिनाये है—भाग, गाजा चरस, पेथेडीन, मारफीन, हीरोइन, कोकीन तथा शराब आदि। जो लोग इनके अधीन हो जाते है, वे बीमार हो जाते है।

सारी दुनिया मे आज नशे की ये चीजे द्रुतगति से फैल रही है। थाइलैड मे ५ लाख से अधिक व्यक्ति नशीली दवाइयो के आदी है, जबकि मलेशिया मे उनकी सख्या सवा लाख है। उनमे से ७५ प्रतिशत व्यक्ति तो हीरोइन का इस्तेमाल करते है। सिगापुर तथा हागकाग मे तो उनकी सख्या ८० प्रतिशत हो जाती है।

Dr. Atty Pio Abarro के अनुसार यह एक सामाजिक-आर्थिक समस्या बन चुकी है। शहरी इलाके मे लोग इसे आदतन लेते है जब कि गावो मे यह गरीबी तथा सामाजिक कारणो से उपयोग मे लायी जाती है। १६ वर्ष से २१ वर्ष के लडके इस गन्दी आदत के विशेष शिकार होते है। १० प्रतिशत औरते भी नशे की ओर कदम बढाने लगी है। निश्चय ही इससे अपराधो मे भारी वृद्धि हो रही है।

इसीलिए भगवान् बुद्ध ने कहा था—मनुष्यो, तुम सिह के सामने जाते समय भयभीत न होना क्योकि वह पराक्रम की परीक्षा है। तुम तलवार के नीचे सिर झुकाने से भयभीत मत होना क्योकि वह बलिदान की कसौटी है। तुम पर्वत-शिखर पर से पाताल मे कूद पडना क्योकि यह तप की साधना है। तुम बढती हुई ज्वालाओ से विचलित मत होना, यह स्वार्थ-परीक्षा है। पर शराब से सदा भयभीत रहना क्योकि यह पाप और अनाचार की जननी है। आगे उन्होने कहा है—जिस राजा के राज्य मे सुरादेवी आदर को प्राप्त होगी वह राज्य कालवेदी पर नष्ट हो जाएगा। वहा न औषधि उपजेगी, न अनाज।

सचमुच भगवान् बुद्ध की यह वाणी अनुभवपूर्ण है। इसीलिए उन्होने अपने

पंचशील मे पाचवा शील—'मज्ज न पातव्व' रखा। भगवान् ने अपने पच महाव्रतो मे तो स्थान नही दिया पर वे यह बात अवश्य कहते है—अच्छे आदमी शराव से हमेशा दूर रहते है। बुद्ध को इसे पचशीलो मे गिनाना पडा, इसका एक कारण यह हो सकता है कि उनके भिक्षुओ मे भी शराव के प्रति आकर्पण हो। महावीर के श्रमण-श्रमणियो मे शराव का आकर्पण तो क्या, भोजन का आकर्पण भी अत्यन्त क्षीण था। इसीलिए उन्हे पच महाव्रतो मे शराव का निषेध करने की आवश्यकता नही पडी। फिर भी महावीर डडे के वल पर शराव छुडाने के पक्षपाती नही है। उनका तो वुराइयो से वचने का एकमात्र तरीका हृदय-परिवर्तन ही है। भारत सरकार ने भी अपने सविधान मे स्वीकार किया है—राज्य अपनी जनता के पोपक भोजन और जीवन-निर्वाह के स्तर को ऊचा करने और सार्वजनिक स्वास्थ्य के सुधार को अपने प्रारम्भिक कर्तव्यो मे मुख्य समझेगा और विशेपतया राज्य वह प्रयत्न करेगा कि नशीले पेयो और नशीली दवाइयो के प्रयोग का निपेध करे।

मांसाहार

मासाहार पर भी भगवान् महावीर ने वहुत तीव्रता से प्रहार किया है। इसके पीछे अहिंसा की दृष्टि तो है ही, पर शरीर और मन की दृष्टि से भी आज वहुत विचार हो चुका है।

वैज्ञानिक खोजो से यह प्रमाणित हो चुका है कि मासाहार शरीर की दृष्टि से अनेक प्रकार से हानिप्रद है। शाकाहार मे ततुमय पदार्थ अधिक होते है। उनसे पेट को साफ रखने मे मदद मिलती है। शरीर के विपाक्त पदार्थ उनके सहारे से वाहर निकल आते है। जव भी आहार मे ततुमय पदार्थो की कमी होती है, वडी आत का कैसर तथा दूसरी वीमारिया होने की शक्यता है।

जिन जानवरो को मारा जाता है उन्हे हार्मोन्स, एन्टीवॉडीज और इसी प्रकार की अन्य औषधिया तथा जतुनाशक दवाइया निश्चय रूप से दी जाती है। जो व्यक्ति मासाहार करता है उसके शरीर मे ये जहरीले पदार्थ जमा हो जाते है। गायो आदि जानवरो को मोटा-ताजा वनाने के लिए भी B E. S. नाम की दवाई दी जाती है। इससे उनके मास को खाने से कैसर की सभावना वताई गयी है। जिन स्त्रियो को आज से पचीस वर्ष पूर्व B. E. S. की औपधि दी गयी थी उनमे तथा उनकी पुत्रियो तक मे कैसर का प्रमाण अधिक पाया गया है।

सभी प्राणियो के शरीर मे विपैले पदार्थ तैयार होते है। वे केवल मल-मूत्र द्वारा ही शरीर से वाहर निकल सकते है। जव कोई जानवर मारा जाता है और उसके मास मे ऐसे पदार्थ रह जाये तो उनके वाहर निकलने का कोई रास्ता नही

रह जाता। हृदय की क्रिया वद होने के वाद शरीर के सारे अवयव पूर्ण रूप से निष्क्रिय हो जाते है। अत. मृत जानवरो के मास मे विपैले पदार्थ भारी मात्रा मे जमा रह जाते है। जो व्यक्ति उसे खाता है, सहज ही वह सारा विपैला तत्त्व उसके शरीर मे पहुच जाता है।

प्राणियो की चरवी और रक्त मे कोलेस्टेराज का प्रमाण अधिक होता है। उससे अतडियो, स्तनो तथा गर्भाशय के रोग तथा हृदयविकार जैसे रोग होने की सभावना अधिक रहती है। प्राणियो के प्रोटीन मे फॉस्फोरस का प्रमाण अधिक होता है। इमसे मनुष्य के कैलशियम तथा फॉस्फोरस का सतुलन विगडता है।

आर्थिक दृष्टि से भी शाकाहार की अपेक्षा मासाहार ज्यादा महगा होता है। एक वकरा ७ पौड अनाज खाता है, तव एक पौड माल तैयार होता है। एलिग जोन्स (Elıg Jones), M D ने अपनी पुस्तक 'Cancer' (पृष्ठ २०-२१) मे लिखा है—'मासाहार कैसर का प्रमुख कारण है। इग्लैड मे इन २५ वर्षो मे मृत्यु सख्या साढे चार गुना वढी है। वहा आनुपातिक रूप मे एक व्यक्ति प्रतिवर्ष १३१ पौड मासाहार करता है। मासाहारियो मे कैसर का वढना कोई आश्चर्यजनक वात नही हे। एक सर्वेक्षण से पता चला है कि मासाहार करने वाले २५ देशो मे से १९ देशो की मृत्यु-सख्या वहुत ऊची है। ५ देशो की मृत्यु-सख्या मध्यम है जवकि केवल १ देश की मृत्यु-दर नीची है।'

उन देशो मे जहा लोग शाकाहार करते है वहा कैसर वहुत कम पाया जाता है। १९७५ मे वम्वई मे कैसर के पाने वालो की सख्या दस हजार मे एक थी जवकि इग्लैड मे ५.५ प्रतिशत थी। ईजिप्त मे काले रगवाली शाकाहारी जातियो मे कैसर नही के वरावर है जवकि मासाहारी जाति मे अग्रेजो जितनी ही है। कोप्ट मठ मे जहा लोग चाय, कॉफी तथा मासाहार नही करते है, पिछले २७ वर्षो मे कैसर की एक घटना भी नही हुई।

अमेरिकन सिनेटरो की समिति ने 'आहार-विपयक अमेरिका का ध्येय' विपय पर अपनी रिपोर्ट पेश करते हुए यही कहा है—मासाहार से हृदय-विकार तथा कैसर की सभावनाओ से इनकार नही किया जा सकता।

मांसाहारी लोगो का पेशाव प्राय तेजावयुक्त होता है। इम कारण शरीर के रक्त का पेशाव और क्षार का अनुपात ठीक रखने के लिए हड्डियो मे से क्षार के नमक खून मे मिलते रहते है। इसके विपरीत शाकाहारियो का पेशाव क्षार वाला होता है। इसलिए उनकी हड्डियो का क्षार खून मे नही आता और हड्डिया मजवूत रहती है। डॉ० ए० वॉचमैन और डॉ० डी० एम० वर्नसीन ने हार्वर्ड मेडिकल स्कूल रिपोर्ट, १९६९, पृ० ४५८ मे लिखा है—

मासाहार पाचन-सस्थान को खराव करता है, क्योकि वह मुह की लार की

प्रतिक्रिया को क्षार से अम्ल मे परिवर्तित कर देता है। इस प्रकार लार अपने काम मे सक्षम नही होती।

श्रम—कायक्लेश

भोजन के वाद महावीर अग्रक्रमता देते है श्रम को। इसके लिए उनका अपना शब्द है कायक्लेश।

साधारणतया लोग श्रम को कष्टकारक, निम्नस्तरीय तथा सुख-सुविधा जुटाने का साधन मात्र मानते है, पर श्रम तो अपने आप मे आनददायक है। श्रम से पूर्ण मुक्ति एक प्रकार से मृत्यु है। आरामतलबी और मृत्यु मे गहरा सबध है। महावीर का तो एक विशेष ही श्रमण है। श्रम अर्थात् श्रम करने वाला। महावीर विलासितापूर्ण जीवन को अपना लक्ष्य नही मानते। साधारणतया उन्होने श्रमणो के लिए दिन मे सोने का स्पष्ट निषेध किया है। उन्होने कहा है—जो श्रमण दूध-दही आदि विविध पकवान खाकर दिन मे सोते है, वे पाप-श्रमण है। ऊपर-ऊपर से देखने पर ऐसा लगता है, यह एक कठोर विधान है। परपरा ने भी काय-क्लेश शब्द के साथ वहुत ज्यादतिया की है। ऐसा माना जाने लगा कि जितना कायक्लेश किया जाये, उतना ही अच्छा है। पर महावीर ने शरीर पर ज्यादतिया करने वाले को तो वाल तपस्वी कहा है। उनका कायक्लेश का अर्थ है—विलासितापूर्ण जीवन की अस्वीकृति। इसीलिए वे श्रमण के लिए किसी शैया पर सोने की इजाजत नही देते। इसका अर्थ देह-दड नही है, अपितु विलासिता का निषेध है। आज तो शिकागो के डॉ० आई० एच० ओलेस्की ने भूमि-शयन को एक सवल चिकित्सा के रूप मे स्वीकार कर लिया है। उनका दावा है कि भूमि-शयन मात्र से तमाम रोगो का इलाज किया जा सकता है। भूमि पर सोने के लिए भी किसी गद्दे की आवश्यकता नही है, अपितु केवल एक कंवल और दो तकियो की। तकिये भी सुख-सुविधा के लिए नही, अपितु उनसे ठोडी सीने का स्पर्श करती रहे, यह जरूरी है।

प्रकृति ने धरती माता की गोद मनुष्य को सोने के लिए दी है। पर सभ्यता ने मनुष्य से वह गोद छीन ली है। आज मनुष्य डनलोपिलो के गद्दो पर सोकर निरर्थक ही अनेक प्रकार की वीमारियो को आमत्रण दे रहा है। हजारो लोग मात्र मुलायम विस्तर पर सोकर अपनी रीढ की हड्डी को स्थानच्युत कर लेते है। ये गद्दे शायटिका, पीठ का दर्द आदि रोगो का प्रमुख कारण वनते है। औसत आदमी अपना एक-तिहाई समय सोने मे विताता है। यदि वह ठीक तरह जमीन पर सोता है तो स्वास्थ्य की दृष्टि से भी अनेक लाभ उठाता है। वैज्ञानिको का कहना है कि इस स्थिति मे दो शक्तिया सक्रिय होती है—एक तो भूमि के आकर्षण

की तथा दूसरी भूमि की कठोरता की। आकर्षण शक्ति तो शरीर को अपनी ओर आकृष्ट करती है तथा कठोरता उसे ऊपर की ओर ढकेलती है। ऐसी स्थिति मे ही विपरीत शक्तिया काम करती है जो शरीर-स्वास्थ्य पर गहरा प्रभाव डालती है। जापान के लोग जमीन पर ही सोते है तथा सिर के नीचे काठ का ही तकिया लगाते है। यह वडी स्वास्थ्यप्रद शैया मानी गयी है।

शारीरिक स्वस्थता के लिए भी श्रम एक महत्त्वपूर्ण आवश्यकता है। अव यह स्पष्ट हो गया है कि शरीर के क्षार और अम्लता का अनुपात ठीक रखने के लिए मनुष्य को भोजन के साथ-साथ नित्य आवश्यक श्रम भी करना चाहिए। शरीर मे स्वाभाविक रक्त-सचालन तथा मल-निष्कासन अगो को अपना पूरा काम करने के लिए यह आवश्यक है। आज यातायात के यान्त्रिक साधनो की सुविधा के कारण व्यक्ति को पसीना आये, ऐसा श्रम करने की आवश्यकता ही नही रह गयी है। इससे मल निष्कासन करने वाले जटिल अग—त्वचा के कार्य करने की क्षमता घट जाती है। इतना ही नही, श्रम-विमुखता के कारण कुछ विकसित देशो मे और भी अनेक प्रकार की समस्याए पैदा हो गयी है। उन देशो मे आदमी अधिक-से-अधिक मोटर आदि वाहनो मे ही चलते है। इससे उनके घुटनो मे ऐसी अकडन पैदा हो जाती है कि उन्हे मोटर ड्राइविंग की मुद्रा मे ही वैठना जरूरी हो जाता है। इसलिए आजकल वहा पैदल चलने या साइकिलिंग का प्रचलन वढ रहा है।

इसी प्रकार नित्य वातानुकूलित वातावरण मे (घर, मोटर, ऑफिस—सभी जगह) रहने के कारण वहा के लोगो के शरीर से पसीना नही निकलता। इससे उनको अनेक प्रकार की वीमारियां हो जाती है। उनसे निपटने के लिए उन्हे स्टीम वाथ लेना पडता है। पर उसमे भी अनेक कठिनाइया पैदा हो रही है। वास्तव मे श्रम जीवन के लिए एक अनिवार्य अपेक्षा है। उसका दूसरा पर्याय नही हो सकता।

पुराने जमाने मे लोगो को कडा परिश्रम करना पडता था। उन्हे आराम तथा मनोरजन के लिए वहुत कम समय मिलता था। पर आज हमारा युग श्रम-विमुखता की एक दूसरी अति की ओर तेजी से अग्रसर हो रहा है। इस ऐश-आराम तथा खेलकूद की इच्छा मे अल्वर्ट छविरस की यह उक्ति कि 'काम करने के वाद आराम करो'—एक दुखदायक तथा वीती वात रह गयी है। इसके लिए हम पिछली सदी का उदाहरण ले सकते है, जवकि आदमी सप्ताह मे ७२ घटे काम करता था, पर धीरे-धीरे वह ४८, ४४ तथा ४० से घटकर ३८ घटे रह गया है। वात यहां तक नही है, आज तो वहुत सारी वडी-वडी कम्पनिया ४ दिन काम के सप्ताह की वात पर गहराई से विचार कर रही है। यह जो समय वचता है, क्या इसका किसी दूसरे उत्पादक कार्य मे उपयोग होता है ? नही, वह समय

आज टेलिविजन के सामने बीतता है। एक गणितज्ञ ने ऐसी घोषणा की है कि आने वाले पचीस वर्षों मे बल्कि पहले ही, हमे यह परिणाम दीखना शुरू हो जायेगा कि दो प्रतिशत लोग काम करेगे और ९८ प्रतिशत आदमी आराम करेगे। हो सकता है इस भविष्यवाणी मे कुछ अतिशयोक्ति हो, पर इतना तय है कि आज अधिकतर आदमी काम कम करना चाहते है तथा आराम ज्यादा करना चाहते है। यह सच है कि सतुलित जीवन के लिए ताजगी की आवश्यकता है। पर आज विकसित देशो मे यह अधिक खाली समय एक समस्या बन गया है। वहा के लोगो के सामने एक समस्या खडी हो गयी है कि वे अपना खाली समय किस तरह बिताये ? क्या कारण है कि ज्यादा खाली समय मनुष्य को ज्यादा खुशी नही दे पाता। मैक्सगुटल ने अपनी पुस्तक 'The Week enders' मे लिखा है—ज्यादा फुरसत से ज्यादा सुख नही मिल सकता। अच्छे रहन-सहन का जादुई करिश्मा इस बात का कोई सबूत नही पेश कर सका कि केवल फुरसत का समय बढाने मात्र से हमारी समस्याए अपने आप हल हो जायेगी। वास्तव मे उनकी जडे कही और जगह मे है। जीवन की जिम्मेदारी से पलायन करने की इच्छा से इस समस्या का गहरा सम्बन्ध है। हर बडा देश आज या कल इस गलत ढग से बिताये जाने वाले खाली समय की बीमारी का शिकार हुआ है या होगा।

पुरातन काल मे खूब मेहनत करने वाले स्पार्टा के लोग भी अधिक खाली समय के शाप से ग्रसित हुए थे। अरस्तु ने अपनी 'पॉलिटिक्स' पुस्तक मे लिखा है—जब तक वे युद्धक्षेत्र मे जूझते रहे, तब तक सुरक्षित रहे। पर साम्राज्य के मिलते ही उनका पतन शुरू हो गया। शाति के समय प्राप्त फुरसत के समय को किस प्रकार बिताना चाहिए, यह वे नही जानते थे। (पॉलिटिक्स, भाग २, पृ० १२७)।

इसी दुर्दशा का उल्लेख इतिहास ने लगभग समस्त राष्ट्रो के बारे मे किया है। रोमन साम्राज्य के बारे मे भी यही बात है। रोमन साम्राज्य की ऊचाई उस समय की एक अद्वितीय करिश्मा थी। मगर जैसे ही ससार ने उनके सामने झुकना शुरू किया, उन्होने अपना फुरसत का समय बढाना शुरू कर दिया। नीरो के साम्राज्य-काल मे रोम मे वर्ष मे १७६ दिनो अर्थात् लगभग दो दिनो मे से एक दिन की छुट्टी होती थी।

इतिहास इस बात का साक्षी है कि भौतिकतावाद ने बड़ी-बड़ी सभ्यताओ का सिर नीचा कर दिया है। आज भी वे ही राष्ट्र आगे बढ रहे है जिनके नागरिक श्रम मे विश्वास करते है। जैसे राष्ट्र के विकास के लिए विलासिता से बचना जरूरी है, उसी प्रकार भगवान् महावीर ने व्यक्ति-विकास के लिए श्रम की प्रतिष्ठा प्रदान की है। इसी दृष्टि से यौगिक व्यायाम आदि का भी काय-क्लेश के अदर ही समावेश हो जाता है। यद्यपि महावीर अलग से योगासनो के

वारे मे कुछ नही कहते, पर फिर भी अनेक आसनो की चर्चा उनके साहित्य मे मिलती है। इस मार्ग पर चलने पर अपना सहज जीवन जीते हुए जो कष्ट आ जाये उसको धैर्यपूर्वक सहना ही काय-क्लेश है। वैसे महावीर कष्टो से वचने की वात नही कहते है, वल्कि वे उनसे सामना करने की वात कहते हे। इसी अर्थ मे उनका 'देहे दुक्खं महाफल' का आशय समझना चाहिए। जब तक व्यक्ति मे कष्ट-सहिष्णुता नही आती है तव तक वह जीवन को सहज साधना नही वना सकता। योग आसन भी मनुष्य को कष्टो को सहने की क्षमता प्रदान करने मे सहयोगी वन सकते है। इसलिए वे काय-क्लेश के अग वन सकते है।

प्रतिसंलीनता और शिथिलीकरण

आज के तनावपूर्ण जीवन मे शिथिलीकरण का एक अमृतोपम महत्त्व वन गया है। इसके अभ्यास से नीद अच्छी तरह से आती है। काम करते समय शक्ति का क्षय कम होता है, उत्तेजनाओ से वचना आसान होता है, चित्त प्रसन्न रहता है तथा व्यक्ति अधिक दिनो तक युवा बना रहता है।

यदि सही ढग से शिथिलीकरण किया जा सके तो उसका मन पर भी प्रभाव वहुत अच्छा पडता है। वह व्यक्ति हर चुनौती को स्वीकार कर सकता है तथा जटिल से जटिल परिस्थिति मे भी अपने आपको शात रखकर उनसे लाभ उठा सकता है।

शिथिलीकरण किसी भी अवस्था मे किया जा सकता है। यह आवश्यक नही है कि उसे लेटे-लेटे ही किया जाए। वह वैठे-वैठे या खडे-खड़े भी किया जा सकता है। वास्तव मे शिथिलीकरण का अर्थ है इन्द्रियो को अपने विपय से मुक्त वना लेना। जव इन्द्रिया रूप, रग, गध, रस, स्पर्श से निवृत्त हो जाए तो अपने आप प्रतिसलीनता फलित हो जाएगी। दूसरे शव्दो मे हम इसे शवासन भी कहा करते है।

तनाव शव्द का प्रयोग चिकित्साशास्त्र मे १९४० के वाद आरभ हुआ। इससे पहले तनाव शव्द को इजीनियरिंग शव्दावली मे ही प्रयुक्त किया जाता था। प्रथम और द्वितीय महायुद्ध के वाद सैनिको के व्यवहार ने मनोवैज्ञानिको का ध्यान अपनी ओर आर्कपित करना शुरू किया। युद्ध के शोर-शरावे तथा तनावो के फलस्वरूप हुई विकृतियो को मनोवैज्ञानिको ने युद्ध-विश्राति (वैटल-फटीग) का नाम दिया। युद्ध के दौरान और उसके एकदम वाद तक मनोवैज्ञानिक इस (वैटल-फटीग) का कारण मस्तिष्क मे होने वाली हानियो को ही मानते थे, लेकिन १९४० के आस-पास इसका कारण व्यक्ति की उस प्रतिक्रिया को माना जाने लगा जो घोर तनाव को दर्शाता था। 'तनाव' शव्द का जमकर प्रयोग इसी दौर मे चिकित्सा के क्षेत्र मे शुरू हुआ और आज तनाव शव्द का

प्रयोग उन परिस्थितियो के लिए किया जाता है जहा व्यक्ति आनेवाली स्थिति मे पहुच कर अस्त-व्यस्त हो जाता है। अनुभव और अनुसधान से निर्विवाद सिद्ध हो चुका है कि मानसिक और शारीरिक क्रियाओ पर तनाव का बुरा असर पड़ता है।

तनाव का मस्तिष्क पर प्रभाव

तनाव का असर दिमाग तक ही सीमित रहा हो तो दिमाग तथा व्यवहार सबधी बीमारियां उत्पन्न हो जाती है और यदि इसका प्रभाव शरीर के दूसरे अगो तक पहुचता है तो उन अगो मे बीमारिया पैदा हो जाती है। ऐसी अवस्था मे तनाव-जनित बीमारियो को 'साइकोसोमेटिक' की सज्ञा देते है। जब तनाव पैदा होता है तो दिमाग का हायपोथेलेमस नाम का भाग कारटेक्स एव शरीर के दूसरे अवयवो को तुरन्त आपात सूचना जैसी तरगे भेजना शुरू कर देते है। जहा ये तरगे पहुचती है, वहा उनके आघात के फलस्वरूप विभिन्न प्रकार के दूषण पैदा हो जाते है। उन अगो की कार्य-प्रणाली दूषित हो जाती है और बीमारिया पैदा हो जाती है।

आधुनिक चिकित्सक तथा मनोवैज्ञानिक तनाव का पहला कारण भीड-भाड से भरे शहरो और मकानो को मानते है। इस विषय मे डॉ० जानकौलहन ने लगातार चौदह वर्षो तक चूहो पर अनुसधान किया। उन्होने अपने प्रयोग से यह सिद्ध कर दिया कि—भीड-भरे घरो तथा ज्यादा आबादी वाले शहरो मे तनाव बढ जाता है, जिसके कारण अपराधो और बीमारियो मे वृद्धि होती है।

अमेरिका के 'टेक्सास हेल्थ साइस सेटर विश्वविद्यालय' के एक भौतिकशास्त्री श्री माइकेल पी० स्टर्न ने अपनी एक रिपोर्ट मे कहा है—हृदयरोग आज के तकनीकी और औद्योगिक समाज मे पहले दर्जे का मारक रोग हो रहा है। सन् १६०५ के लगभग अमेरिका मे इस बारे मे एक सर्वेक्षण किया गया था जिसमे सभी मृतको मे से २५ प्रतिशत हृदयरोग के शिकार पाये गए। पर सन् १६५५ मे उनकी सख्या ५५ प्रतिशत हो गई। आजकल वहा ७० प्रतिशत व्यक्ति कार्डियो व्यस्कूलर रोगो की चपेट मे होते है। अमेरिका मे प्रतिवर्ष लगभग १० लाख व्यक्तियो को एक न एक बार हृदय-रोग का दौरा पडता है। उसमे से लगभग २ लाख मर जाते है।

ये तो अमेरिका के आकडे हैं। पर थोडे-बहुत लोग हर देश मे इससे मरते है। वर्ल्ड हेल्थ ऑर्गनाइजेशन के अनुसार २२ प्रमुख देशो के मृतको मे से आधे मृतक हृदय-रोगी होते है। सचमुच यह एक जटिल समस्या है। दवाइयो के आविष्कार बढ रहे हैं पर उसी मात्रा मे रोग भी बढ रहा है। ऐसी स्थिति मे योगाभ्यास—खासकर शवासन—एक महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया बन जाती है। गवर्नमेट

हॉस्पिटल, मद्रास के डॉ० सी०लक्ष्मीकान्तन् की रिपोर्ट का व्यौरा देते हुए मेडिकल टाइम (२ १०.७०) कहता है—यद्यपि हृदयरोगियो को ऐसे आसन न करने की स्पष्ट सलाह देनी चाहिए जिससे उनका रोग बढता हो, पर ४५ अश का कोण बनाते हुए किये जाने वाले शवासन से इस रोग मे बहुत लाभ मिलता है। शवासस का यह प्रकार न केवल हृदय-रोग के लिए ही अपितु उच्च रक्तचाप आदि अनेक रोगो के लिए भी उपयोगी बन सकता है।

क्रोध, आवेश, उत्तेजना, चिंता, भय, शोक, उदासी, कुढन आदि कारणो से मनुष्य के मन मे तनाव बढता है। इससे रक्त मे ऊष्णता बढती है तथा पाचनक्रिया विगड जाती है। इससे मासपेशियो और नाडी-सस्थान के मिलन-केन्द्रो पर 'एसिटिल कोलेन' नामक पदार्थ बनने लगता है। वह अन्य पदार्थो के साथ मिलकर कार्बन और कोगल का निर्माण करता है। इस स्थिति मे लैक्टिक ऊष्ण भी बनने लगता है जिससे शरीर की मुलामियत नष्ट हो जाती है और कडापन बढने लगता है। इससे रक्तप्रवाह तथा पेशीय सचालन मे अवरोध उत्पन्न हो जाता है। शरीर मे होनेवाले तनाव को विश्राम तथा खान-पान से मिटाया जा सकता है पर मनोविकारो से उत्पन्न होने वाले तनाव को आध्यात्मिक उपायो द्वारा ही मिटाया जा सकता है। उसके लिए आवश्यक है कि रूखा और निर्मल जीवन जिया जाये। उससे मुक्त होने के लिए शिथिलीकरण भी एक बहुत ही सुन्दर उपाय है। शारीरिक शिथिलिता के बाद मन को विश्राम देने के लिए निश्चेष्ट बनने देने से मानसिक अशाति भी दूर हो सकती है।

तनाव के प्रकार

तनाव कई प्रकार के होते है। निराशा से तनाव उत्पन्न होते है। हर उम्र के अपने-अपने तनाव है। बच्चो के तनाव युवको के तनाव से और युवको के तनाव वृद्धो के तनावो से भिन्न होते है। बच्चो के तनाव का कारण प्राय मां-बाप और खासतौर से मा से प्यार न मिलना, सुरक्षा की भावना की कमी, बच्चे के साथ मां-बाप का व्यवहार, निराशा, शारीरिक कमजोरी आदि होते है।

युवा पीढी के अपने तनाव है—जैसे कैरियर सबधी, आर्थिक रोजगार सबधी, यौन सबधी तथा विवाह और परिवार सबधी कुठाए।

वृद्धावस्था के तनावो मे आर्थिक, रिटायर्ड होने के कारण एकातिकता, शारीरिक अक्षमता आदि होते है। नयी पीढी से सामजस्य की कमी, दूसरो पर निर्भरता और परिवार मे पहले सरीखा हुक्म न चलना भी इसका कारण होता है।

इन तनावो का स्वास्थ्य के ऊपर व्यापक प्रभाव होता है। यह सत्य है कि अगर ये तनाव बराबर रहते है और इनके बाहर निकालने या इन्हे दूसरा मोड देकर इनकी विनाशकारी शक्ति को शिथिल करने का कोई साधन नही बन पाता है तो कई प्रकार की बीमारिया पैदा हो जाती है। जैसे बच्चो मे व्यवहार सबधी बीमारिया, उदाहरणार्थ—अगूठा चूसना, बिस्तर मे पेशाब करना, अनुशासन-हीनता, जिद, पेट-दर्द, सास की बीमारिया, सामाजिक बुराइया—जैसे चोरी करना, झूठ बोलना, डरना, घबराना, एकान्तप्रिय बन जाना आदि।

युवा सबधी तनावो मे—सिरदर्द, सिर मे भारीपन, घबराहट, नीद न आना, बेचैनी, थकान, कार्यक्षमता मे कमी—इनके साथ ही सामाजिक बुराइयो की ओर भी युवक अग्रसर होने लगते है, जैसे चोरी करना, राहजनी करना, झूठ बोलना, छेडछाड करना। यह बात भी सिद्ध हो चुकी है कि उच्च रक्तचाप की बीमारी का तनाव एक प्रमुख कारण है। वृद्धावस्था मे गठिया वायु, स्त्रियो मे मासिक धर्म सबधी बीमारिया जैसे नपुसकता, मोटापा, चर्म रोग, दाद, खाज खुजली भी तनाव से पैदा होते है। तनाव के कारण मधुमेह, दिल के दौरे और आतो मे छालो की बीमारी भी होती है। दमा भी एक तनावजनित बीमारी है। यह बात सत्य है कि एक तनाव मात्र ही इन बीमारियो का कारण नही है, परन्तु तनाव भी एक प्रमुख कारण है और बीमारी को बढाने मे एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है, इसमे सदेह नहीं है।

तनाव आज के जीवन की अनिवार्य शर्त है। इसके साथ स्वस्थ रहकर जीवित रहना कला है। आधुनिक चिन्तन के अनुसार सर्वप्रथम घर मे बच्चे उतने ही पैदा होने चाहिए जिनकी ठीक तरह देखभाल कर सके। उन्हे सपूर्ण भोजन, वस्त्र और उच्च शिक्षा दे सके। उन्हे अपना प्यार-दुलार तथा सुरक्षा दे सके तथा जीवन के रणक्षेत्र मे उतरने के लिए उचित तरीके से सवार सके। इसके लिए मा-बाप को बालविकास, मनोविज्ञान सबधी ज्ञान होना चाहिए। अस्पतालो मे नि शुल्क परामर्श रोग विशेषज्ञो से मिलता है, उसका लाभ उठाना चाहिए।

युवको मे आर्थिक अभाव से बहुत तनाव पैदा होता है। अत जरूरते कम करे तथा सतोष की भावना का विकास करे। आर्थिक स्थिति को दृढ निश्चय, अनुशासन, कडी मेहनत से सुधारा जा सकता है। निराशा को दूर रखना चाहिए। अच्छी आदतो का निर्माण करना चाहिए, अपनी सुरुचि (हॉबी) बनाना चाहिए। इससे आतरिक सुख-शाति मिलती है तथा तनावो से भी छुटकारा मिल जाता है। पर इसके विपरीत देखा यह जाता है कि लोग तनावो से दूर रहने के लिए नीद की गोलियो और शराब का सहारा लेते है। इनसे समस्या सुलझने की बजाय और

जटिल हो जाती है तथा नयी-नयी उलझनो का सृजन करती है। सही रास्ता तो यह है कि यथासभव तनावो के मूल कारणो को ही दूर किया जाए। यदि वे दूर नही हो सकते है तो मानसिक और शारीरिक शक्ति को क्षय होने से बचाने के लिए नयी रुचि (हॉबी) अपनाये। इससे इन तनावो को मोड मिल जायेगा।

आजकल के आपाधापी-युक्त जीवन की वजह से प्रत्येक व्यक्ति को चिंता, फिक्र तथा तनाव (स्ट्रेन) आदि से सदा दो-चार होना पडता है, जिसका मन पर अवश्य परिणाम होता रहता है। जाहिर है कि मानसिक तनाव बढते ही रक्तचाप (बल्ड-प्रेशर) और हृदय-विकार आ जाते है। रक्तचाप और हृदय-विकार का उत्तम और आसान उपाय है 'शवासन'। प्रतिदिन ३०-४० मिनट शवासन करे तो निश्चय ही उपरोक्त दोनो विकारो को रोका जा सकता है।

शवासन योगविद्या का एक अग है। योगविद्या केवल शारीरिक शिक्षण ही नही, अपितु मन का सामर्थ्य और उसकी एकाग्रता बढाकर मनुष्य जीवन को सतुलित तथा सार्थक बनाने की विद्या है। योगाभ्यास से शारीरिक क्षमता, मानसिक स्थिरता तथा भावात्मक शातता प्राप्त की जा सकती है। शवासन से मन और शरीर को सपूर्ण विश्राम मिल सकता है। प्रसिद्ध हृदयरोग विशेषज्ञ डॉ० के० के० दाते ने पन्द्रह बीस वर्ष इस विषय का अनुशीलन करके अनुभव प्राप्त किया है। शवासन के प्रयोग के बाद उन्होने कार्डियोग्राम लेकर इनकी जाच-पड़ताल भी कर ली है।

जिसे मानसिक तनाव कम करना सध जाता है, उसे रक्तचाप और हृदय रोग का कदापि भय नही। शवासन करने के छह मुद्दे ध्यान मे रखे—(१) शरीर की स्थिति चित पडने पर दोनो पैरो का अन्तर ३० अश का रहे। इससे प्राणवायु अथवा शक्ति (एनर्जी) कम खर्च होती है, ऐसा शोध के बाद सिद्ध हो चुका है। (२) हाथ के तलुवे चित हो और उगलिया अधखुली रखे। (३) धीरे-धीरे श्वास लेने और छोडने पर ध्यान रहे। (४) श्वास लेते समय पेट उभरे और छोडते समय अदर जाए, अन्य स्नायुओ की हलचल पूर्णतया बद रखे। (५) सास लेते समय ठडी हवा अदर ले और छोडते समय उष्ण वायु बाहर फेंके। शरीर और मन अत्यन्त निश्चल रखे। यह प्रतिसलीनता शिथिलीकरण का प्रारम्भिक रूप है। वास्तव मे जब शिथिलीकरणता सध जाती है तो उसे किसी भी आसन मे प्राप्त किया जा सकता है।

अपने श्वसन की एक मिनट मे १८ की जो गति होती है वह ४० मिनट तक शवासन करने के बाद छह या सात तक पहुच जाती है। मन विचार-रहित करने से या एक ही विचार (बिंदु) पर बनाये रखने से श्वसन गति मे यह फर्क आता है। रक्त-वाहिनियो मे रक्त-प्रवाह सामान्य (नॉर्मल) होकर हृदय रोग पर सीम-

इक्कीस दिन मे ही अनुकूल प्रभाव पडता है। जिसे नीद नही आती, उसको दस दिन के इस व्यायाम से व्यवस्थित नीद आने लगती है, मनो-दौर्बल्य कम हो जाता है। मानसिक सन्तुलन प्राप्त हो जाता है। निद्रानाश वालो को शवासन वरदान है। स्नायुओ की शिथिलताजन्य कायिक व मानसिक विश्राम के कारण भावनाओ का कल्लोल (उद्रेक) शात होकर मानस रोग न्यूरॉसिस, रक्तचाप, फिट्स आना आदि भली प्रकार ठीक हो जाते है।

मन को खूब नियन्त्रित करके शवासन करे। शरीर का कोई भाग बगैर हरकत मे लाये ऊपर दी हुई प्रत्येक सूचना व्यवस्थित ढग से अमल मे लायी जाये तो उपर्युक्त सभी विकार ठीक होकर नवजीवन प्राप्त हो सकता है। हृदय रोग विशेषज्ञ जो गोलिया या दवाइया देते है वे केवल रोगी के समाधान के वास्ते ट्रैंक्विलाइजर्स या स्लीपिग पिल्स होती है।

शवासन और हृदय-रोग

आज की औद्योगिक सभ्यता का मानव तनावो से भरी जिंदगी जी रहा है। अपने इस जीवन का भी कारण वह स्वय है। वह भौतिकता की दौड मे आगे से आगे जाने की कोशिश कर रहा है। और इस भौतिकवादी चकाचौध मे आराम के अधिक से अधिक साधनो को बटोरने मे वह जुट-सा गया है। वह प्रकृति, प्राकृतिक जीवन और श्रमसाध्य कामो व व्यायाम से अपने को निरन्तर दूर और दूर करता जा रहा है। जहा विकसित पाश्चात्य देशो के लोग इन रोग-सघातो से मुक्ति पाने के लिए छटपटा रहे है, वही भारत झूठी पाश्चात्य समृद्धि को पाने के लिए अपनी सस्कृति की अमूल्य धरोहर शाति को दाव पर लगा बैठा है। इसे अन्य शब्दो मे कहे कि, जहा भारत की प्राचीन जीवन-पद्धति ने पश्चिमी देशो को अपनी ओर आकृष्ट करना शुरू किया है, वहा भारत उसकी उपेक्षा कर रहा है। नित नयी दवाइयो और रोगोपचारक उपयोगो के शोध मे लगे विकसित देश अब कहने लगे है कि दवाए तथा धन-वैभव तनाव से मानव को मुक्ति दिलाने मे असमर्थ है। उसके लिए वे अपने मरीजो पर स्नायविक तथा ग्रथि सबधी व्यायामो पर अधिक जोर दे रहे है। उसका खासा लाभ भी दीख रहा है। ऐसे व्यायामो को जिन्हे पाश्चात्य देश व्यायाम नाम से जानते-समझते है, भारत मे 'योग एव ध्यान-धारणा' नाम से जाना जाता है।

शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक व्यायामो का समुच्चय 'योग' अथवा 'यौगिक क्रिया' है। यदि हम प्रतिदिन आधा घटा इन क्रियाओ को करे, तो निश्चय ही न केवल शारीरिक तथा मानसिक तनावो से मुक्त रहेगे, बल्कि कभी किसी शारीरिक रोग से पीड़ित भी न होगे।

हमारे देश मे विख्यात हृदयरोग विशेषज्ञ डॉ० के० के० दाते ने भारत मे विशेष रूप से शोधकार्य किया है। वे प्राय: विश्वभर मे हृदय-रोग के सबंध मे आयोजित गोष्ठियो मे सम्मिलित हुआ करते है और जहा भी जाते है, प्राचीन ऋषियो के योग-सवधी सदेश को और उस क्षेत्र मे अपने शोधकार्य-प्राप्त प्रतिफलों की चर्चा किया करते है। वे वडी दृढता से कहते है कि, 'इस बढते हृदय-रोग से मुक्ति का उपाय बस योग ही है।' उनका कहना है कि, यदि अनुशासनबद्ध होकर योगाभ्यास निरन्तर किया जाये, तो व्यक्ति स्वस्थ व रोगमुक्त जीवन आनदपूर्वक पूर्ण क्षमता के साथ जी सकता है। 'बीमारियो के कारण तो आज का आदमी शारीरिक और मानसिक रूप मे दीवालिया हो रहा है, पर हृदयाघात की भयकरता ने सभी आयु-वर्ग के लोगो को उत्साहहीन और अव्यक्त घबराहट का जीवन जीने को मजबूर कर दिया है।' इससे त्राण पाने का बहुत वड़ा साधन योग है। यह हृदय का मात्र शक्तिवर्द्धन ही नही करता, अपितु दबाव के प्रति शारीरिक प्रतिक्रिया संवधी दृष्टिकोण मे परिवर्तन लाकर मनुष्य का शारीरिक तथा मानसिक उत्थान करता है।

योग जीवन जीने का एक सतुलित मार्ग है। इसमे मात्र हठ योग नही लेना चाहिए। यम, नियम और प्रत्याहार भी इसमे सम्मिलित है, जो जीवन के आधारभूत सत्य पर जोर देते है। बात सीधी है कि यदि हम किसी का बुरा नही करते, तो हमे भयभीत होने का प्रश्न ही नही उपस्थित होता और भयहीन जीवन मे तनाव की कही गुजाइश नही है। योग मात्र हमारी शारीरिक प्रणाली को ही ठीक नही करता, वह व्यक्ति को आध्यात्मिक दृष्टि से भी ऊपर उठाता है। हम सब जानते है कि जीवन तनावो से भरा हुआ है। जीवन का एक भी क्षण बिना किसी चिंता के नही गुजरता।

मानस-विज्ञान और जैन धर्म

अध्यात्म पारलौकिक अभ्युदय की कल्पना मात्र नही है। वह वर्तमान जीवन से भी अत्यन्त अभिन्नता से जुड़ा हुआ है। जो व्यक्ति अपना यह जीवन सार्थक नही बना सकता वह आगे का जीवन भी कैसे सार्थक बना सकेगा ? भगवान् महावीर ने जीवन को सार्थक बनाने के लिए निर्जरा-साधना की व्यवस्था दी। इसका एक अर्थ शरीरपरक है तो दूसरा मन-आत्मपरक। शरीर की दृष्टि से निर्जरा का अर्थ है वृद्ध न होना। देवता बूढे नही होते। इसीलिए उनका एक नाम है निर्जर। जो व्यक्ति निर्जरा की साधना करता है, उसे बुढापा नहीं घेरता। वह सदा युवक रहता है। मन-आत्मपरक दृष्टि से निर्जरा का अर्थ है पुराने सस्कारो का निर्जरण—क्षय होना। इसीलिए निर्जरा के बारह भेदो का बाह्य तप और आभ्यतर तप—इन दो शब्दो मे वर्गीकरण किया गया है। पहले छह भेद बाह्य तप के है, वे प्रमुख रूप से शरीर का स्पर्श करते है। यद्यपि उनके साथ भी मन शुद्धि तो जुडी हुई है पर फिर भी शरीर-शुद्धि की राह से गुजरकर मन शुद्धि तक पहुचते है। चूकि साधना के लिए शरीर भी एक प्रमुख साधन है इसलिए उसे भी गौण नही किया जा सकता। इसलिए महावीर ने अनशन, ऊनोदरी, भिक्षाचरी, रसपरित्याग, कायक्लेश और प्रतिसलीनता के रूप मे छह बाह्य तपो का विधान किया।

मानसिक-आत्मिक साधनापरक आभ्यतर तप के छह भेद इस प्रकार है—प्रायश्चित, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, ध्यान और व्युत्सर्ग। बाह्य तप शरीर की सीमा तक जाता है, आभ्यतर तप अन्तर मे उतरता है। आभ्यतर तप एक प्रकार से मानसिक चिकित्सा का प्रतिरूप है। समग्र स्वास्थ्य की दृष्टि से शरीर और मन इतने जुडे हुए है कि दोनो को अलग करना कठिन है। इसीलिए आजकल चिकित्साशास्त्र मे एक शब्द चल पडा है—सोमोसाइटिक। इस दृष्टि से शरीर और मन की बीमारियो को बिलकुल अलग करके नही देखा जा सकता। शरीर की बीमारी केवल शरीर की ही नही होती। उसकी जडे मन मे भी जमी हुई

रहती है। होम्योपैथिक डॉक्टर पी० एन० बनर्जी अपनी पुस्तक 'क्रोनिक डिजीज : इट्स काज एण्ड क्योर' मे लिखते है—गलत चिंतन और गलत इच्छाए पहले आती है और वे धीरे-धीरे बाहरी शरीर मे परिवर्तन कर देती है। क्योकि आतरिक शरीर हमेशा अन्तर्मानस से गहरा सम्बन्धित रहता है।'

इस प्रकार आज इस बात मे कोई सन्देह नही रह गया कि हमारी अधिकाश बीमारियो का मूल कारण हमारा अनाध्यात्मिक होना ही है। अत यदि हमे रोगो की अतिम चिकित्सा करना है तो शरीर-चिकित्सा के साथ-साथ अन्तस्तप पर भी ध्यान देना होगा। इस दृष्टि से मानसिक रोगो के अपसरण के लिए प्रायश्चित चिकित्सा का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

मनुष्य की अधिकतर व्याधिया मन के रोगी होने के कारण है। मन की भावनाओ को सुधारने के सिवाय उन रोगो का कोई स्थायी उपचार नही है। चरक ने लिखा है—व्याधि का पहला कारण है—प्रज्ञा अपराध अर्थात् अज्ञान। आगे वे लिखते है—अपने आपको केवल शरीर मानना मूर्खतापूर्ण अभिमान है। वास्तव मे मनुष्य शरीर से अलग है। उसी मे राग-द्वेष आदि भावनाए होती है। उन पर नियत्रण ही रोगो की सर्वोत्तम चिकित्सा है (चरक सहिता, भाग ३, अध्याय प्रथम)।

एक मुस्लिम सत थे। नियम के बडे पाबन्द और भक्त हृदय। रोज पांच बार नमाज पढते थे। एक दिन बहुत थके हुए थे, इसलिए सो गये। जब नमाज का समय आया तो किसी ने उन्हे जगाया—'उठो, उठो—नमाज का वक्त हो गया है।' वे उठे। बडे स्नेह मे बोले—'भाई! तुमने बडी कृपा की। नमाज पढना तो आज रह ही जाता। जरा अपना नाम तो बताओ!'

'मेरा नाम शैतान है।' उठाने वाले ने उत्तर दिया।

संत को बडा आश्चर्य हुआ। बोले—'शैतान! पर शैतान का काम तो लोगो को प्रार्थना करने से रोकना है—धर्म-कर्म मे बाधा पहुचाना है, तब तुमने मुझे नमाज पढने के लिए जगा कैसे दिया?'

शैतान बोला—'इसमे भी मेरा स्वार्थ है। एक बार पहले भी ऐसा हुआ था। तुम थके हुए आये और सो गये थे। नमाज का वक्त चला गया था। अत मै बहुत खुश हुआ। लेकिन तुम जागे तो धरती-आकाश एक कर दिये। तुम्हे यो पश्चात्ताप करते देख अल्लाह ने सोचा—यह तो मेरा बडा भगत है। एक बार नमाज नही पढने के कारण इतना पछतावा कर रहा है। परिणाम यह हुआ कि नाराज होने के बदले अल्लाह तुमसे और अधिक खुश हो गया। मैं अचभे मे पड गया, यह क्या हो गया? फिर यही बात न दोहराई जाय इसलिए आज मैंने नमाज के समय जगा दिया।'

इस कहानी मे प्रायश्चित का आध्यात्मिक पहलू प्रकट होता है। पर अब

प्रायश्चित केवल अध्यात्म का विषय ही नही रह गया है, अपितु उसका मनोवैज्ञानिक रूप भी बहुत स्पष्ट हो चुका है। इस दृष्टि से एक पूरी की पूरी चिकित्सा पद्धति विकसित हो चुकी है।

बहुत बार हमारे अवचेतन मन मे कुछ ऐसी गाठे जन्म ले लेती है जो हमारे सारे व्यक्तित्व को प्रभावित करती है। भगवान् महावीर ने उसका नाम दिया है—शल्य। जब तक शल्य निराकृत नही होता तब तक न तो आध्यात्मिक व्यक्तित्व उभर सकता है और न शारीरिक व्यक्तित्व ही। उत्तराध्ययन सूत्र की टीका मे इस सम्बन्ध मे एक बहुत सुन्दर उदाहरण दिया गया है। एक राजा घोडे पर सवार होकर लडाई करने के लिए गया। युद्ध के मैदान मे घोडे ने इतना जबरदस्त कौशल दिखाया कि उसकी वजह से ही राजा लडाई जीत सका। इससे राजा उस पर बहुत खुश हुआ। घर लौटकर उसने घोड़े की खूब सेवा करनी शुरू कर दी। पर घोडा दिन-दिन दुर्बल होता गया। राजा ने उसकी बहुत चिकित्सा करवाई—पर वह किसी प्रकार स्वस्थ नही हो पा रहा था। आखिर एक चिकित्सक आया। उसने घोडे के शरीर पर चुम्बक फिराया। उससे आकृष्ट होकर घोडे के शरीर मे गडी हुई लोहे की कील बाहर निकल आयी जो युद्ध के दौरान उसके अन्दर प्रवेश कर गयी थी। उसके निकल जाने के बाद थोडे दिनो मे ही घोडा स्वस्थ और हृष्ट-पुष्ट हो गया।

यह शरीर की बात है। पर हमारे मन की भी ऐसी ही स्थिति है। जब कोई अपराध मन की गहराई मे बैठ जाता है और वह निराकृत नही होता है तो मनुष्य का सारा व्यक्तित्व ही विकृत हो जाता है। इस विकृति को मिटाने के लिए महावीर प्रायश्चित्त चिकित्सा का विधान करते है। जिस प्रकार मनश्चिकित्सा मे मन मे पडी गाठ को बिखेरना आवश्यक समझा जाता है और त्रिविध प्रश्नो के प्रयोगो के माध्यम से उसे उगलवाने का प्रयास किया जाता है उसी प्रकार जैन धर्म मे कोई गलत काम हो जाने पर उसके लिए सरल हृदय से आलोचना करना आवश्यक माना गया है। कुछ लोग सोचते है कि प्रायश्चित से हम दुष्कृत्यो से मुक्त नही हो सकते। पर जिन्होने प्रायश्चित विधि का समग्र अनुशीलन किया है। वे लोग ऐसा नही कर सकते क्योकि प्रायश्चित मे किसी प्रकार की विवशता नही है। यह कोई सजा भी नही हैं। यह तो व्यक्ति की स्वय की इच्छा से उद्भूत होती है। जब हृदय मे सरलता आती है तब व्यक्ति अपने दोष के प्रति प्रायश्चित्त की भावना से भर जाता है तो वह गुरु के पास जाकर अपनी गलती का परिशोधन करता है। यह तो अपनी गलती का परिशोधन है।

यह तो बिलकुल अनुभव की बात है कि जब तक व्यक्ति अपनी गलती का परिशोधन नही कर लेता है तब तक उसके मन पर एक प्रकार का बोझ-सा

अनुभूत होता रहता है।

जो लोग इस बोझ को नही समझते है, धीरे-धीरे वे अपने अन्दर अपराधो को जन्म देने लगते है। यदि हम अपराधो का मनोवैज्ञानिक अध्ययन करे तो पता चलेगा कि वे गलती के प्रति उपेक्षाभाव से ही गहरे होते है। जब भी आदमी पहली बार गलती करता है तो उसका मन विरोध करता है। पर परिस्थितिवश या अन्य किसी आवेश से वह गलती कर डालता है। यदि वह उसका परिशोधन कर लेता है तो अपराध भाव क्षीण हो जाता है। यदि उसका परिशोधन नही करता है तो वह गहरे से गहरा होता चला जाता है।

जैन आगमो मे प्रायश्चित एक बहुत ही व्यवस्थित प्रक्रिया है। एक प्रश्न का उत्तर देते हुए उत्तराध्ययन सूत्र (२९-५) मे महावीर ने कहा है—आलोचना अर्थात् प्रायश्चित से जीव अनन्त ससार को बढाने वाले मोक्ष मार्ग से विघ्न उत्पन्न करने वाले निदान तथा मिथ्यादर्शन शल्य को निकाल फेकता है और ऋजुभाव को उपलब्ध हो जाता है। बल्कि छेदसूत्र के नाम से कुछ ग्रन्थ तो केवल प्रायश्चित्त-विधि पर ही विशद प्रकाश डालते है। उनमे सबसे पहले बताया गया है कि प्रायश्चित्त करने का अधिकारी वही व्यक्ति होता है जिसका हृदय बालक के समान सरल-निर्मल हो। हम देखते है बालक अपनी गलती को अपने अभिभावको के सामने स्पष्ट रूप से प्रकट कर देते है। जो बालक ऐसा नही कर पाते, या जो अभिभावक अपने बच्चो की इस सरलता मे अवरोध पैदा कर देते है, उनके बच्चे ग्रन्थिल बन जाते है। जो बालक स्पष्ट रूप से अपनी गलती को वमित कर देता है,उसमे किसी प्रकार की गाठ नही बधती। वास्तव मे ऋजुता की यह वृत्ति ही हमारे जीवन मे निर्ग्रन्थता को जन्म देती है। यही वह भूमिका है जिस पर अध्यात्म का बीज बोया जा सकता है। जिस व्यक्ति मे ऐसी ऋजुता नही होती वह अपनी गलतियो को छिपाता रहता है। एक बार भले ही वह उसे अपनी कुशलता समझ ले पर अन्तत जब अन्दर गडी हुई गाठ फूटती है तो बीमारी आदि के रूप मे बहुत सारी गन्दगी बिखेर देती है। जिसकी गांठ नही खुलती है वह अस्वाभाविक एव अस्वस्थ जीवन जीकर दूसरो को तो परेशान करता ही है, पर स्वय भी अंत मे अशान्त की मौत मरता है।

ऋजुता के बिना यदि कोई अपनी गलती का प्रायश्चित्त भी करता है तो वह निरर्थक चला जाता है। व्यवहार-सूत्र मे बताया गया है कि प्रायश्चित्त देते समय आचार्य सबसे पहले इस बात को देखे कि प्रायश्चित लेने वाले व्यक्ति का हृदय शुद्ध है या नही। हृदय की शुद्धि और अशुद्धि के आधार पर समान दोष करने वाले दो व्यक्तियो के प्रायश्चित्त मे भी भारी अन्तर आ जाता है। शुद्ध और सरल हृदय से प्रायश्चित्त करने वाले व्यक्ति को प्रायश्चित्त कम आता है तथा मन मे गांठ रखकर प्रायश्चित्त करने वाले व्यक्ति को प्रायश्चित्त ज्यादा

आता है।

आराधक और विराधक

जैन आगमो मे वताया गया है कि जो व्यक्ति अन्तिम समय मे भी अपनी भूलो की आलोचना नही कर पाता वह विराधक हो जाता है। इतना ही नही कि उसकी अगली गति अच्छी नही होती, अपितु ऐसी स्थिति मे मरने वाले व्यक्ति की आत्मा अन्त तक अशान्त बनी रहती है। इसीलिए जैन-परम्परा मे आराधक मृत्यु को वहुत वडा महत्त्व दिया गया है। जो लोग गलतियो को अपने मन मे दबाये मरते है वे अपना अगला जीवन उसी सस्कार से शुरू करते है। इसीलिए जैन धर्म मे ही नही, सभी धर्मो मे प्रायश्चित्त का वहुत वडा महत्त्व है। ईसाई लोग भी जीवन के अतिम क्षणो मे पादरी के सामने अपनी गलतियो का रेचन—प्रायश्चित्त करना आवश्यक समझते है। आधुनिक मनोविज्ञान की दृष्टि से अपनी मनोग्रन्थियो का अपसरण—रेचन कर लेना स्वस्थ जीवन का एक बहुत बड़ा आधार है।

स्थानाग सूत्र मे प्रायश्चित्त की दस कोटिया वताई गई है— १. आलोचना, २. प्रतिक्रमण, ३ तदुमय, ४ विवेक, ५ व्युत्सर्ग, ६. तप, ७. छेद, ८. मूल, ९. अनवस्थाप्य १०. पाराचित। वास्तव मे प्रायश्चित्त की यह विधि अत्यन्त मनोवैज्ञानिक है। अत इसका थोडा विस्तार करना अनुपयुक्त नही होगा।

१. आलोचना

अपनी भूल को गुरु के सामने प्रकट कर देना। इस विधि मे गुरु उस व्यक्ति को कोई प्रायश्चित्त नही देते। उनके सामने अपनी गलती का निवेदन कर देना ही उसका प्रायश्चित्त हो जाता है।

आधुनिक मानस-चिकित्सा मे जिस प्रकार चिकित्सक के व्यक्तित्व का सघटित होना आवश्यक माना जाता है, उसी प्रकार शास्त्रो में भी आचार्य के व्यक्तित्व का सघटित होना आवश्यक वताया गया है। यदि आचार्य का व्यक्तित्व सघटित नही होगा तो गलती करने वाला व्यक्ति उनके सामने खुलकर अपनी गलती को स्वीकार नही कर सकेगा। वल्कि आचार्य के लिए यह आवश्यक होता है कि वे शिष्य के मानस को तैयार करने के लिए ऐसी भूमिका का निर्माण करे ताकि गलती करने वाला अपनी गलती को अत्यन्त सहजता से स्वीकार करने मे कोई सकोच महसूस न करे। आचार्य के लिए यह भी स्पष्ट निर्देश है कि वह शिष्य की गलती को अकारण किसी अन्य व्यक्ति के सामने प्रकट न करे। वह तटस्थ भाव से निर्भयतापूर्वक तथा विना किसी दवाव के शिप्य का

मार्गदर्शन करे। यदि ऐसा नही कर पाता तो वह स्वय प्रायश्चित्त का भागी व
जाता है।

दूसरे के सामने अपनी गलती को सरलता से स्वीकार कर लेना भी ए
बडी वात है। इसके लिए व्यवहार सूत्र (१-३४ से ३६) मे एक वहुत मनोवैज्ञानि
वात कही गयी है। यदि कोई भिक्षु किसी अकृत्य का सेवन करने के वाद उसक
आलोचना करना चाहे तो जहा अपने आचार्य-उपाध्याय हो, वहा उनके पा
जाकर अपने दोष की आलोचना करे। यदि आचार्य-उपाध्याय उपलब्ध न ह
तो अपने गच्छ के साभोगिक-सार्धमिक भिक्षु के पास आलोचना करे। यदि
भी उपलब्ध न हो तो अन्य गच्छ के असभोगिक सार्धमिक के पास आलोचना करे
यदि वह भी उपलब्ध न हो तो साधुता से च्युत वहुश्रुत गृहस्थ के सामने आलोचन
करे। वह भी उपलब्ध न हो तो किसी गृहस्थ के सामने आलोचना करे। वह भ
उपलब्ध न हो तो जगल मे आश्रम आदि निर्जन स्थान मे जाकर ईशान को
की ओर मुह कर सिर पर अजलि वाधकर अरिहन्त सिद्धो की साक्षी से अपन
गलती स्वीकार करे एव उसकी आलोचना करे।

अपनी गलती को इस प्रकार प्रकट करने के पीछे यही मनोवैज्ञानिक तथ्
छिपा हुआ है कि इससे प्रायश्चित्त करने वाले व्यक्ति के मन मे सरलता क
प्रवेश होता है। इसीलिए इस वात पर इतना वल दिया गया है। यद्यपि बहुत
सारी भूलो के प्रायश्चित्त शास्त्रो मे नियत है। आचार्य उन्हे घटा-वढा नही
सकता। पर फिर भी दोषी व्यक्ति गुरु की उपस्थिति मे स्वय स्वीकार
नही कर सकता। गुरु के सामने उसे स्वीकार करना प्रामाणिकता का
परिचय है। आचार्य वास्तव मे किसी को प्रायश्चित्त देते नही है। वे
तो उसे प्रायश्चित्त वता देते है कि इस गलती का इतना प्रायश्चित्त
होना चाहिए। यदि शिष्य अपनी गलती स्वीकार न करे तो आचार्य
को कोई अधिकार नही कि वे प्रायश्चित्त दे। इस सम्वन्ध मे व्यवहार(१-२४)
मे एक वहुत ही रुचिकर उदाहरण दिया गया है—मान लीजिए दो साधु एक
साथ विहार कर रहे है। दोनो ने मिलकर कोई अकृत्य किया। उनमे से एक
साधु ने आकर गुरु के पास अपने दोप की आलोचना कर ली तो आचार्य उसे
प्रायश्चित्त वता देगे। पर, दूसरा साधु अकृत्य को स्वीकार नही करता है,
तो आचार्य उसे प्रायश्चित्त नही दे सकते। हालाकि दोप का सेवन तो दोनो ने
मिलकर किया है, पर चूकि एक उसे स्वीकार नही करता तो उसे प्रायश्चित्त के
लिए वाध्य नही किया जा सकता। आचार्य उसे भिन्न-भिन्न प्रकार से समझाने
की कोशिश करें, यह आवश्यक है। इतने पर भी वह अपना दोप स्वीकार न
करे और आचार्य को यदि यह विश्वास हो जाये कि इसने दोप किया है तो वे
उसे गण से पृथक् अवश्य कर सकते है, पर प्रायश्चित्त नही दे सकते।

२. प्रतिक्रमण

प्रायश्चित्त की दूसरी कोटि है—प्रतिक्रमण। यदि किसी साधक से कोई मामूली गलती हो जाये तो उसे 'मिच्छामि दुक्कड' कहकर निरस्त किया जा सकता है। 'मिच्छामि दुक्कड' का अर्थ है—मेरा दुष्कृत मिथ्या निष्फल हो। यह एक प्रकार से अपनी गलती के लिए क्षमा मागने जैसी बात है। क्षमा व्यवहार मे दूसरे से मागी जाती है, पर वास्तव मे तो वह अपने प्रति ही होती है। इसलिए अपनी गलती के लिए अपने प्रति क्षमा मागना ही 'मिच्छामि दुक्कड' है। मिच्छामि दुक्कड के साथ गलती फिर नही दुहराने का सकल्प भी जुडा हुआ है। यहा यह प्रतिक्रमण शब्द भी वहुत महत्त्वपूर्ण है। क्रमण का अर्थ है—चलना। अतिक्रमण का अर्थ है—अपनी सीमा से आगे पैर वढा देना। प्रतिक्रमण का अर्थ है—सीमा से आगे वढे पैर को लौटा देना। वैसे जव भी कोई छोटी-मोटी गलती हो तो 'मिच्छामि दुक्कड' कहकर उसे मुड जाना ही प्रतिक्रमण है। फिर भी साधु के लिए सुवह और शाम दोनो ममय जान-अनजान मे हुई अपनी भूलो से प्रतिक्रमण करना आवश्यक है।

३. तदुमय

तीसरी कोटि का यह प्रायश्चित्त पिछले दो प्रायश्चित्तो से कुछ गुरुतर होता है। अत उसके अन्तर्गत आने वाली भूलो के लिए आचार्य के पास आलोचना करना भी आवश्यक है तथा प्रतिक्रमण भी आवश्यक है।

४. विवेक

विवेक का अर्थ है—पृथक होना। मान लीजिए, किसी साधु के पास भूल से या जानते हुए भी कोई अकल्प्य वस्तु आ गयी तो उससे पृथक् होने के लिए यह आवश्यक है कि उसका विधिपूर्वक उत्सर्ग कर दिया जाये। प्रायश्चित्त विधि का शास्त्रो मे लम्वा-चौडा वर्णन है। भिन्न-भिन्न प्रसगो पर भिन्न-भिन्न विधियो का इतनी सूक्ष्मता के साथ निदेशन किया गया है, कि उसे पढते-पढते व्यक्ति अविभूत हो जाता है। निश्चय ही उसके पीछे वहुत वडा मनोविज्ञान छिपा हुआ है।

५ व्युत्सर्ग

व्युत्सर्ग का अर्थ है, तत्काल कायोत्सर्ग कर देना, शरीर को शिथिल कर लेना। यद्यपि चालू भापा मे इसको घ्यान करना भी कहा जाता है, पर घ्यान तो एकाग्र होता है। कायोत्सर्ग एकाग्र नही, व्यग्र होता है। जैसे किसी को दुस्वप्न आ जाये

तो उसी समय उठकर चार लोगस्स का कायोत्सर्ग करना पड़ता है। लोगस्स मे चौवीस तीर्थकरो की स्तुति है। स्तुति को हम ध्यान नही कह सकते। वह किसी एक स्थान पर भी केन्द्रित नही है। एक के वाद एक तीर्थंकर की स्मृति स्पप्ट रूप से व्यग्र चिन्तन है। फिर भी इसमे शरीर को दुष्प्रवृत्ति से हटाकर सत्प्रवृत्ति मे लगाना पड़ता है, अत अलवत्ता एकाग्रता की आवश्यकता तो होती ही है, इसीलिए चालू भापा मे इसको ध्यान भी कह दिया जाता है। दुस्वप्न या अन्य दुष्प्रवृत्ति मे जव साधक का मन वुरे विचारो से भर जाता है, तो उस शृखला को तोड़ने के लिए यह आवश्यक है कि उसकी धारा को मोड़ा जाए। इसलिए उत्सर्ग मे तत्काल शरीर को निष्क्रिय शिथिल कर लिया जाता है। शरीर जव शिथिल हो जाता है, तो उसके साथ श्वास का स्थिर होना भी आवश्यक हो जाता है। इसलिए लोगस्स के उच्चारण के साथ श्वास की गति का एक निश्चित तालमेल होना भी आवश्यक है। जव मन श्वास के साथ जुड जाता है तो दुष्प्रवृत्ति का प्रभाव अपने आप रुक जाता है। इस दृप्टि से उत्सर्ग का अपना एक वहुत वड़ा महत्त्व हो जाता है।

लोगस्स में तीर्थकरो के चरण में अपने आपको समर्पित कर देने का वहुत सुन्दर भाव है। सचमुच महाशक्ति के सामने अपना समर्पण कर देना वहुत वडे दूषण से वचने का अमोघ उपाय है। जव साधक दुश्चिन्तन से आक्रान्त हो जाता है, उसके जाल मे घिर जाता है, तो महापुरुपो की शरण मे आकर उस व्यूह से मुक्त हो सकता है। जो व्यक्ति सदा अपनी वागडोर अपने अहं को सौपे रखता है, वहुत वार उसका जीवन उसके अपने लिए ही भार वन जाता है। सम्मोह की ऐसी स्थिति मे साधक को अपना वोझ उतारने के लिए आवश्यक है कि अपनी वागडोर अपने आराध्य के हाथो मे सौप दे, इसलिए उत्सर्ग मे (चतुर्विशति) चौवीस तीर्थकरो की स्तुति करना जरूरी है।

६. तप

प्रायश्चित्त की यह छठी कोटि है। जव गलती इतनी वड़ी हो कि वार-वार उत्सर्ग के द्वारा भी सशोधन नही हो पाता, तव तपस्या के द्वारा विशुद्धि की जाती है। तपस्या दो प्रकार की है—आन्तरिक और वाह्य। यहा मुख्य रूप से वाह्य तपस्या को ही लिया है। यद्यपि आन्तरिक तपस्या के द्वारा भी मन का सन्तुलन विठाया जाता है। जव वह अत्यन्त चचल हो जाता है, तो उसे नियन्त्रित करने के लिए वाह्य तपस्या का आसरा लेना पडता है। चूकि वाह्य ससार के साथ हमारा सवमे गहरा सम्पर्क भोजन के द्वारा होता है, अत. अव वाह्य तप के द्वारा भोजन को छुड़ाकर साधक को आत्मोन्मुख करना पड़ता है। तप का प्रारम्भ नौकारसी, पोरसी, विगय-वर्जन, एकासन, आयम्विल, उपवास आदि मे होता है, जो वढते-

वढते तपस्या की सीमा को छूने लगता है। इसलिए शास्त्रो मे गलती के अनुपात मे अर्द्धमासिक, मासिक, चौमासिक, छहमासिक आदि विभिन्न तपस्याओ का विधान किया गया है।

७ छेद

जहा गलती तप से भी गुरुतर होती है, तो फिर साधक की सावधिक चारित्रिक पर्याय का छेद कर दिया जाता है। अर्थात् मासिक, चातुर्मासिक, षण्मासिक आदि कालावधि तक उसकी दीक्षा-पर्याय का अवमूल्यन कर दिया जाता है। उस कालावधि के अन्तर्गत यदि कोई दूसरा साधक उससे छोटा हो तो वह (छोटा साधक) दीक्षा-पर्याय मे वडा हो जाता है। यह एक प्रकार की सावधिक पदावनति-सी ही है।

८. मूल

इस प्रायश्चित्त के अन्तर्गत साधक को मूल अर्थात् नये सिरे से सन्यास का सकल्प ग्रहण करना पडता है। उसकी पहले की सारी चरित्र पर्याय रद्द हो जाती है। जैसे किसी साधु ने वडे अनाचार का सेवन कर लिया हो तो उसे फिर से नयी दीक्षा ग्रहण करनी पडती है। नवदीक्षित की तरह उसे नये सिरे से अपना जीवन शुरू करना पडता है। यह एक प्रकार से डिमार्केशन है, जिससे उसकी अमुक प्रकार की पदोन्नति प्रतिवद्ध हो जाती है।

९. अनवस्थाप्य

इस प्रायश्चित्त के अन्तर्गत भी साधक को नयी दीक्षा तो लेनी ही पडती है, पर उसके साथ-साथ अपना वेश-परिवर्तन भी करना पडता है। एक वार गृहस्थ का वेश धारण कर फिर सन्यासी का वेश धारण करना पडता है। मूल मे केवल नयी दीक्षा ही आवश्यक है, पर अनवस्थाप्य मे नयी दीक्षा के साथ-साथ वेश-परिवर्तन भी आवश्यक है—यही इन दोनो मे अन्तर है।

१०. पाराचित

यह प्रायश्चित्त का सवसे वडा तथा अन्तिम प्रकार है। इसमे गृहस्थ का वेश पहनकर छ महीने तक स्थान-स्थान पर अपनी गलती के लिए आत्म-निन्दा करनी पड़ती है। इस प्रायश्चित्त वाले व्यक्ति की गलती इतनी वडी होती है कि उसे पुन संघ मे प्रविष्ट होने के लिए सारे लोगो की सहानुभूति प्राप्त करनी आवश्यक

हो जाती है। इसलिए वह गृहस्थ वेश धारण कर आत्मनिन्दा कर लोगो मे अपनी पैठ जमाता है।

इस सारे प्रायश्चित्त प्रकरण मे गुरु एक कुशल चिकित्सक की तरह साधक के समक्ष रहता है। वह सदा उसकी मन स्थिति का अकन करता रहता है। उसी अनुपात मे वह साधु के प्रायश्चित्त मे कमी-वेशी भी कर सकता है। इस अन्तराल मे यदि उसे कोई शारीरिक व्याधि आ जाए तो उसका उपचार करवाना आवश्यक है। उस समय गुरु उसे नाम मात्र का प्रायश्चित्त देकर पहले उसकी परिचर्या की सम्यक् व्यवस्था करते है, फिर जव वह शारीरिक रूप मे स्वस्थ हो जाता है तो उसके मानसिक आरोग्य के लिए प्रयत्न किया जाता है। उसे उतना ही प्रायश्चित्त दिया जाता है जिससे कि उसका मानसिक सन्तुलन वना रहे। इस प्रकार हम देखते है कि प्रायश्चित्त एक प्रकार की मानसिक चिकित्सा है। इससे गलती करने वाले को सभलने का अवसर मिलता है।

प्रायश्चित्त और दण्ड—दो भिन्न दिशाए है। प्रायश्चित्त व्यक्ति स्वय करता है, दड दूसरो के द्वारा दिया जाता है। जव तक आदमी मे प्रायश्चित्त का भाव नही जागता है, तव तक दड उसे कितना ही क्यो न दिया जाये वह अपनी गलत राह से मुक्त नही हो सकता। इस सम्वन्ध मे एक व्यग्य वहुत मजेदार है—एक व्यक्ति को किसी अपराध मे कारागृह की सजा हुई। सजा भुगतने के वाद वह अपने घर लौट रहा था। जव वह जेल से वाहर आने वाला था तो जेल का कम्वल भी अपने साथ ले जाने लगा। जेलर ने कहा—अरे भले आदमी, तुम यह क्या करते हो, कम-से-कम जेल को तो वख्शो। उसने सहज भाव से कहा—साहव ! आप चिन्ता न करे, मै इस सप्ताह नही तो अगले सप्ताह जेल मे लौट आऊगा। उस समय आपका कम्वल भी साथ ले आऊगा। पता नही घटना सही थी या गलत, पर इतना तय है कि जव तक आदमी का मन प्रायश्चित्त से नही भर जाता तव तक दड के डर से वह अपराध से मुक्त नही हो सकता। अपराध-निवारण के लिए आज भी कानून तो वहुत वने हुए है, दड की व्यवस्था भी है, फिर भी उनकी सख्या दिनो-दिन वढती ही जा रही है। पुलिस अनुसधान तथा विकास व्यूरो द्वारा प्रस्तुत १९७९ के आकडो के अनुसार भारतवर्ष मे १९९२९ व्यक्तियो की हत्याए, १,१८३९ अपहरण, १२७०६ डकैतिया तथा २१५९७ चोरिया हुई। इन आकड़ो की पिछले दस सालो के आकड़ो से तुलना करने पर पता चलता है कि अपराधो की सख्या मे १९६९ से १९७९ तक ३५ से लेकर ११७ प्रतिशत की वृद्धि हुई, जवकि जनसंख्या मे २४.६ प्रतिशत की वृद्धि हुई। व्यूरो द्वारा १९८१ के प्रथम तीन महीनो के आपराधिक आकडो मे गत वर्ष की तुलना मे लगभग १३ प्रतिशत वृद्धि दिखाई गयी है। ये मामले तो वे है, जो पुलिस रिकार्ड मे दर्ज हुए है, धोखा-

धडी तथा अन्य छोटे-मोटे मामलो की सख्या तो वेशुमार है। वहुत सारे मामले तो पुलिस तक आते ही नही है।

अपराध विपयक अनुसधानो से पता चलता है कि जेल मे आने वाले अपराधियो मे उन लोगो की सख्या ज्यादा होती है जो वार-बार अपराध करते है। यदि आदमी अपनी गलती का प्रायश्चित्त कर लेता है, तो उससे मुक्त होने की दिशा स्पष्ट हो जाती है। इस दृष्टि से आध्यात्मिक विकास के लिए ही नही अपितु सामाजिक विकास के लिए प्रायश्चित्त एक महान औषधि का काम कर सकता है। आज तक समाज ने दड-व्यवस्था के माध्यम से अपराधवृत्ति को कम करने की कोशिश की है पर अब धीरे-धीरे यह समझ मे आने लगा है कि दड की अपेक्षा इसका आध्यात्मिक हल ज्यादा सक्षम हो सकता है।

विनय

शब्द-शास्त्र की दृष्टि से विनय के दो विरोधी अर्थ है—पहला वि+नय=विशेष रूप से पाना और दूसरा वि+नय=खोना। पर गहराई से देखा जाये तो इन दोनो अर्थो मे एक आत्यतिक अविरोध भी है। पाना और खोना—वास्तव मे दो नही है। खोये विना पाया नही जा सकता। जो अपने अह को खोता है वही दूसरो को अपने अदर प्रवेश दे सकता है। इसी दृष्टि से विनय एक साधना वन जाता है। पर यह केवल साधना का ही सवाल नही है। मनोविज्ञान की दृष्टि से भी जब तक मन खाली नही होता तव तक मनुष्य नया अर्जन नही कर सकता। मनुष्य के मन-आत्मा पर अह के असख्य-अगण्य सस्कार जमे हुए है। जव तक वे चिपके हुए रहते है तव तक उसमे पवित्रता प्रवेश नही कर सकती। जव आदमी का अह विगलित होता है तभी उसमे विनम्रता प्रकट होती है और वह नया ग्रहण करने मे समर्थ होता है।

साधारणतया लोग विनय के कायिक अर्थ को ही पहचानते है। वडे व्यक्ति को हाथ जोड लेना, सिर झुका लेना यही विनय माना जाता है। पर यह सव वाहरी लोकोपचार विनय है। जव तक आदमी का अतर खाली नही होता तव तक वह उपचार मात्र रह जाता है। इसका मतलव यह नही है कि वाहर का उपचार अनावश्यक है। यह भी लोक-दृष्टि से अपेक्षित हो सकता है, पर जव तक अह विगलित नही हो जाता तव तक इसका कोई विशेप अर्थ नही है। अह विगलित होने के वाद यदि कोई वाह्य विनय न भी करे तो चल सकता है पर वाह्य विनय तो करे और अह विगलित न हो तो वह वहुत मूल्यवान नही वनता।

वास्तव मे विनय एक भावना है। छोटे के हिसाव से कभी इसे विनय या अनुशासन कह दिया जाता है तो वडे के हिसाव से स्नेह और वात्सल्य भी कह दिया जाता है इसलिए इसे किसी एक क्षेत्र या रूपाकृति मे नही वांधा जा

सकता। यह तो सम्पूर्ण जीवन मे अभिव्याप्त है। समाज, परिवार, स्कूल, दफ्तर—सभी जगह इसका बे-रोक-टोक प्रवेश है। अनुशासनहीनता आज समूचे विश्व की समस्या है। यदि इससे निपटना है तो आवश्यक है कि इसे जीवन का एक हिस्सा बनाया जाये।

जो लोग मनुष्य को शरीर मात्र समझते है, उनमे शरीर का अहकार आये बिना नही रह सकता। समाज और राष्ट्र भी एक प्रकार का सीमित अहकार है। जो तमाम विश्व के साथ अपने आपको जुडा हुआ मानते है, उनके लिए सारे घेरे समाप्त हो जाते है। यही वास्तव मे आध्यात्मिक अनुभूति है। जब तक मनुष्य मे प्राणिमात्र के प्रति समता का भाव नही आ जाता तब तक अध्यात्म फलित नही हो सकता। समता की यह साधना विनय है। आत्मोपासना करने वाले व्यक्ति का हृदय इतना नम्र हो जाता है कि प्राणी के प्रति क्या, निर्जीव के प्रति भी वह दुर्व्यवहार या असद्व्यवहार नही कर सकता।

वैयावृत्त्य

विनय और वैयावृत्त्य—दोनो आपस मे जुडे है। विनय से भावित चित्र ही वैयावृत्त्य— सेवा मे लग सकता है। वास्तव मे सेवा एक बहुत बडी साधना है। बहुत सारे लोगो के लिए इस साधना मे निभ पाना अत्यन्त कठिन है। इसलिए कहा गया है—सेवाधर्म परम गहन योगिनामप्यगम्य'। अर्थात् बहुधा योगी लोग भी सेवा धर्म मे चूक जाते है। जैन धर्म मे सेवा पर बहुत बल दिया गया है। भगवान् महावीर तो यहा तक कहते है—जो बीमार की सेवा करता है, मेरी ही सेवा करता है। उनकी दृष्टि से सेवा और अहिंसा दो नही है। वे उस सेवा को सेवा भी नही मानते जो अहिंसा से नही जुडी हुई हो।

ईसाई धर्म ने भी सेवा को धर्म के साथ जोडकर उसे बहुत बडा विस्तार दिया है। सेवा यदि कामना से की जाती है तो वह एक व्यापार बन जाती है। जो व्यक्ति उसे अपना धर्म बना लेता है वह अपने जीवन को सार्थकता से जोड लेता है। इस दृष्टि से सेवा का अध्यात्म के साथ गहरा सम्बन्ध है। जो व्यक्ति अपने अह को विगलित कर सकता है, वही सेवा के योग्य हो सकता है। इसीलिए वैयावृत्त्य का शाश्वतिक मूल्य है। पर सामाजिक दृष्टि से भी सेवा का बडा भारी महत्त्व है। सेवा का इतना ही अर्थ नही है कि इसमे किसी रोगी के प्राण बच जाते है, बल्कि सेवा का वास्तविक अर्थ तो किसी के चित्त को समाधिस्थ करना है। इसीलिए वह सारी प्रवृत्ति सेवा बन जाती है जो किसी व्यक्ति के जीवन को समाधि की ओर ले जाने मे सहायक बनती है।

आत्म-दर्शन की राह मे आगे वढने वाले कुछ लोग केवल ध्यान पर ही वल देते है। पर महावीर इस दृष्टि से स्वाध्याय और ध्यान, दोनो पर वल देते है। स्वाध्याय से मनुष्य को ज्ञान होता है। ज्ञान से ही ध्यान सभव है। इसलिए स्वाध्याय को ध्यान का हेतु माना जा सकता है। बल्कि स्वाध्याय का अर्थ ही है—स्व का अध्याय—अध्ययन। जो व्यक्ति अपने अध्ययन मे है, उसके लिए स्वाध्याय ध्यान ही वन जाता है। इसमे कोई सदेह नही है कि व्यक्तित्व के निर्माण मे स्वाध्याय का वहुत वडा हाथ है। वैसे ज्ञान आत्मा का गुण है, पर उसे प्रकट करने के लिए स्वाध्याय एक वहुत वडा हेतु माना जा सकता है।

जैन धर्म मे स्वाध्याय के पाच प्रकार इस तरह वताये गये है—वाचना, पृच्छना, परिवर्तना, अनुप्रेक्षा ओर धर्मकथा। इस दृष्टि से स्वाध्याय एक व्यापक अर्थ ग्रहण कर लेता है। प्रार्थना, जाप, मत्र आदि भी इसके अन्तर्गत आ जाते है।

प्रार्थना के महत्त्व को तो इस दृष्टि से भी समझा जा सकता है—प्रार्थना समाज नाम से आज एक पूरा समाज ही खडा हो गया है। जैन धर्म मे भी प्रार्थना का वहुत वडा महत्त्व माना गया है। विभिन्न स्तोत्र, भक्तिगीत आदि प्रार्थना के ही रूप है। पर प्रार्थना के परिणाम से पहले उसका अर्थ समझना भी आवश्यक है। वास्तव मे प्रार्थना कोई याचना नही है, वह तो अपने स्वरूप की खोज है। रामकृष्ण परमहस ने विवेकानन्द से कहा—जा, अदर जाकर मा-देवी से सव कुछ माग क्यो नही लेता? विवेकानन्द कई वार मन्दिर मे गए। घटो आराधना मे लीन रहे, फिर खाली हाथ वापस आ गए। आते ही वोले—वहां पहुचते ही भूल जाता हू कि मेरी कोई माग भी है। रामकृष्ण ने कहा—विवेकानद को अव सव कुछ मिल गया है। यदि प्रार्थना के क्षण मे भी इसके मन मे माग वनी रहती तो मै समझता इसे प्रार्थना की कला नही आती।

प्रार्थना और माग मे वहुत वडा अतर है। आज प्रार्थना का जो अर्थ रूढ हो गया है हम जैन लोग अस्वीकार करते है। इसलिए वे वहुत वार प्रार्थना शब्द की जगह वदना शब्द का प्रयोग करते है। वदना मे मागना कुछ भी नही है अपितु अपनी श्रद्धा निवेदित करना है। वास्तव मे दूसरा कोई देने वाला है भी नही। महावीर की दृष्टि मे दूसरा कोई देने वाला है भी नही। सव कुछ तो आदमी के अपने भीतर ही भरा पडा है। पर वहुत वार आदमी अपने भीतर के हीरो की खान के पास खडा होकर दूसरो से काच की गोलिया मागता रहता है। अविवेकी व्यक्ति वर्षो की चिरतन शृखला तक कडिया ही गिनता रहेगा और अपनी हर प्रार्थना के साथ कोई न कोई नयी माग रखता रहेगा। वास्तव मे प्रार्थना तो

अपने प्रभु को पहचानने की राह है। इसीलिए अपनी पूर्णता तक पहुचकर प्रार्थना के शब्द ही खो जाते है। वहा केवल रह जाता है वह और उसका नि:शब्द प्रभु।

शब्द-शक्ति के दो चामत्कारिक रूप है—एक काव्य और दूसरा मत्र। काव्य मे स्तुतिया-स्तोत्र आदि आते है। भगवान् महावीर ने शब्द-शक्ति को वहुत पहले ही पहचान लिया था। उन्होने हजारो वर्ष पूर्व ध्वनि-तरगो के वारे मे वहुत सारी बाते वतायी है। इसी दृष्टि से वे स्तुति या जाप के महत्त्व को स्वीकार करते है।

मत्र जाप का ही एक रूप है। वह आत्मशक्ति, प्राणशक्ति और चैतन्यशक्ति को जगाने का विज्ञान है। इसके दो विभाग है—एक भक्ति-मार्ग और दूसरा तत्र-मार्ग। जो लोग श्रद्धावान् और सरल होते है उनके लिए भक्ति मार्ग है। बौद्धिक लोगो के लिए तत्र का मार्ग है।

मत्रो के द्वारा जैविक रासायनिक परिवर्तन भी सभव है। हर शब्द के उच्चारण का अपना एक विशेप प्रभाव होता है। शरीर और मन, दोनो पर उसका असर होता है। अध्यात्म की दृष्टि से भी मत्र के अनेक जाप होते है। 'णमो अरहताण' के जाप से कपाय क्षीण होता है। तैजस केन्द्र मे इसका ध्यान करने से क्रोध क्षीण होता है। आनद केन्द्र मे इस मत्र का ध्यान करने से अहकार क्षीण होता है। विशुद्धि केन्द्र मे इम मत्र का ध्यान करने से माया क्षीण होती है। वायु मे इसका ध्यान करने से लोभ क्षीण होता है। इस प्रकार एक ही मत्र के व्यक्ति, क्षेत्र, काल आदि के भेद से विभिन्न परिणाम हो जाते है। इसका एक पूरा का पूरा शास्त्र पुराने जमाने मे विकसित हो गया है। इसीलिए भक्तामर कल्याणमन्दिर, उवरुग्ग हर आदि अनेक स्तोत्र जैन परम्परा मे अत्यधिक प्रचलित है। इन सवके पीछे अनेक रहस्य-कथाए जुडी है।

मत्र-शक्ति आज कोई अजूवा नही रह गई है। पूर्व और पश्चिम मे अनेक लोग उस पर अनुसधान कर रहे है। अनेक स्थानो पर मत्रो के द्वारा शारीरिक चिकित्सा के प्रयोग हो रहे है। फिलिपाइन्स मे तो विना ऑपरेशन के केवल ध्वनि तरगो के द्वारा ही शरीर की चीर-फाड की जा रही है। वैज्ञानिक इस खोज मे गहराई मे लगे हुए हे कि ऑपरेशनो के लिए औजारो की आवश्यकता न रहे। नागपुर मे इस दृष्टि से अनेक अनुसधान हो रहे हे। मत्र एक अत्यन्त सूक्ष्म ध्वनि है। ध्वनि-तरगो का उपयोग आज अनेक रूपो मे हो रहा है। हीरे जैसी कठोरतम वस्तुओ को सूक्ष्म-ध्वनि से काटा जा सकता है। पारे और पानी का मिश्रण साधारणतया नही होता, पर सूक्ष्म-ध्वनि प्रयोग से वह भी सभव हो सकता है। सूक्ष्म-ध्वनि से कपडो की भी धुलाई हो सकती है।

सगीत की ध्वनि से गायो के दूध मे वृद्धि के अनेक प्रयोग रूस मे किए जा

रहे है। प्राचीन काल मे संगीत की ध्वनि-तरगो के द्वारा बरसात करवाने की तथा दीपक जलाने की बात कही जाती है। आज उस सभावना पर भी अविश्वास नही किया जा रहा है।

इतना ही नही, ध्वनि-तरगो के अनेक प्रयोग वनस्पति पर भी किए जा रहे है। मत्रो के प्रभाव से पौधे जल्दी फूलते-फलते है। नागपुर के पास खाकरी नामक गाव मे कृषि मे मत्रो के प्रभाव पर प्रयोग हो रहे है। उनके कुछ परिणाम सामने आये है। उन्होने वैगन, ककडी आदि के बीज बोये। एक खेत मे रासायनिक खाद डाली गयी, बीज बोये गए, पूरा पानी दिया गया, सुरक्षा की गयी। दूसरे खेत मे खाद नही डाली गयी, केवल बीज बो दिये गए। उनमे मत्रो द्वारा अभिमत्रित पानी सीचा गया। परिणाम यह आया कि रासायनिक खाद वाले क्षेत्र मे जहा १६ किलो ककडी और ३५ किलो वैगन पैदा हुए वहा अभिमत्रित जल से सीचे जाने वाले खेत मे ४० किलो ककडी और ७० किलो वैगन पैदा हुए। इन सब प्रयोगो से स्वाध्याय के भौतिक प्रभावो की एक झलक मिलती है। पर वास्तव मे तो स्वाध्याय अन्तर्जागरण की एक प्रक्रिया है। ज्ञान-विज्ञान के जितने भी क्षितिज आज दिखाई दे रहे है वे सब स्वाध्याय की ही देन है।

ध्यान और व्युत्सर्ग

पर स्वाध्याय के साथ जब तक ध्यान नही जुड जाता तब तक सारा ज्ञान बोधक बन जाता है। आज विज्ञान का जो दुरुपयोग हो रहा है, उसके पीछे मूल कारण ध्यान का अभाव ही है। इसीलिए भगवान् महावीर स्वाध्याय के साथ ध्यान को जोडते है।

आज के मानसिक तनावो के युग मे ध्यान का अपना विशेप महत्त्व हो गया है। पर ध्यान का अपना त्रैकालिक महत्त्व है। साधारण भापा मे ध्यान और योग को समानार्थक ही समझा जाता है। पर जैन दृष्टि से ध्यान से भी आगे की एक कक्षा है—वह है व्युत्सर्ग। ध्यान हमारे वर्तमान जीवन मे भी अनेक प्रकार की विशेपताए प्रदान करता है।

हर प्राणी एक द्वैत मे जी रहा है। शरीर और आत्मा का द्वैत। स्वर्ग और नरक का द्वैत। सुख और दु ख का द्वैत। पशुत्व और परमात्मा का द्वैत। जब वह पशुत्व मे जीता है तो दु ख, नरक और शरीर मे जीता है। जब वह परमात्मा मे जीता है तो सुख, स्वर्ग और आत्मा मे जीता है। साधना की शुरूआत होती है इस द्वैत मे सतुलन बिठाया जाये और उसकी सिद्धि होती है उस सतुलन के सहज बन जाने से।

शरीर है तब तक उसको छोडा नही जा सकता। अनशन करके यदि छोड भी दिया जाये तो फिर शरीर ग्रहण करना पड़ेगा। ऊपर से जो शरीर दिखाई

देता है वही शरीर नही है। यह तो स्थूल शरीर है। उसका कारण सूक्ष्म शरीर है। जब तक सूक्ष्म शरीर शेप नही हो जाता तव तक एक शरीर को छोडकर फिर दूसरे शरीर को पकडना पडता है। इसलिए शरीर को छोड़ा नही जा सकता। हां, एक अवस्था ऐसी आ मकती है जब शरीर से पूर्णतया मुक्ति मिल सकती है। वह परमात्म पद है। पर जब तक उसे प्राप्त नही कर लिया जाता, तव तक एक शरीर को छोडकर दूसरे शरीर की यात्रा को वन्द नही किया जा सकता।

शरीर से तो इनकार नही किया जा सकता। पर यदि केवल शरीर सज्ञा ही हमारे पास रही तो पशु मे और मनुष्य मे कोई अन्तर नही रह जायेगा। वैसे परमात्मा पशु के पास भी है, पर वह उम परमात्मा का अनुभव नही कर सकता। पशु केवल सीग-पूछ वाला ही नही होता है। वह आदमी भी पशु ही है, जो परमात्मा को अपने अन्दर नही अनुभव करता। जो केवल शरीर चेतना मे जीता है, वह पशु है।

मनुष्य की शुरुआत यहा से होती है कि वह अपने अन्दर वाले स्वयं को परमात्मा अनुभव करे। मनुष्य जब पूर्ण रूप से मनुष्य बन जायेगा, उसका पशुत्व झड जायेगा, सीग और पूछ झड जायेगे, तो वह शरीर से ऊपर उठकर परमात्मा मे जीने लगेगा। पर उस स्थिति को प्राप्त करने के लिए उसे अभ्यास करना पड़ेगा। कुछ लोग कहते है—वैराग्य से ही सब कुछ होता है। साधना की सिद्धि वैराग्य से भी सभव है। उनका कहना गलत नही है। पर उन्हे यह भी मालूम होना चाहिए कि वैराग्य अभ्यास की ही परिणति है, अगली सीढी है। जो व्यक्ति अभ्यास नही करता वह वैराग्य को प्राप्त नही हो सकता। वैराग्य अभ्यास का ही अगला पडाव है। इसलिए वैराग्य को प्राप्त करना है तो अभ्यास की शरण मे जाना ही पडेगा। कुछ लोगो को वैराग्य इतना सघन होता है कि वे थोडे से प्रयास से ही अन्दर चले जाते है। उनके जीवन मे सहज साधना प्रतिफलित हो जाती है। पर यह नही भूलना चाहिए कि यह वैराग्य उन्हे अभ्यास से ही प्राप्त हुआ है। हो सकता है उन्होने इस जीवन मे अभ्यास नही किया पर उनका वैराग्य वताता है कि उन्होने पूर्वजन्म मे अभ्याम किया था। अभ्यास के विना वैराग्य संभव है ही नही। अत मूल बात वैराग्य नही, अभ्यास है।

अभ्याम शरीर के साथ शुरू होता हे। वैराग्य मे उसकी पूर्णता फलित होती है। अत. साधक को अपना कार्य शरीर से ही, अभ्याम से ही शुरु करना पडता है। शरीर और आत्मा के साथ सतुलन विठाना ही योग है। योग सिद्धि नहीं है, सिद्धि तो अयोग है। अयोग माधना नहीं है, मिद्धि है। उमे प्राप्त करने के लिए योग को माधन के रूप मे म्वीकार करना पडता है। आजकल ध्यान को भी बहुत सारे लोग योग कहते है। पर वास्तव मे ध्यान योग नहीं, अयोग है। जैन परम्परा

मे इस भेद को बहुत स्पष्टता से पहचाना गया है। इसलिए जैन लोग योग को अपना लक्ष्य नही मानते है। वे योग को भी हेय मानते है। वे ध्यान को योग नही कहते। वे उसे अयोग कहते है। योग के साथ शरीर की उपस्थिति है। शरीर तो पशुत्व है। पशुत्व मे जीना ध्यान नही हो सकता। इसलिए योग के साथ भी थोडा-सा बधन है। उस बधन की गाढता कषाय पर निर्भर करती है। योग के द्वारा कषाय पर विजय प्राप्त की जा सकती है। कषाय का अस्तित्व हमारे अन्दर अनादिकाल से है, योग भी अनादिकाल से है। जब-जब योग मे शुभता-शुद्धता आती है तो कषाय मद पड जाता है। धीमे-धीमे वह मदता इतनी पतली रह जाती है कि योग केवल योग रह जाता है और अतिम क्षण मे साधक योग से अयोग मे छलाग लगा जाता है।

योग मे जो शुभता-शुद्धता आती है वह परमात्म के अनुभव से आती है। परमात्म का पहला अनुभव है सम्यक्त्व। दूसरा अनुभव है योग पर अकुश लगाना। पर चूकि योग पर अकुश एक साथ नही लगाया जा सकता, अत योग को सावधानी से, अप्रमत्त भाव से, जागरूकता से करना, यह साधना का तीसरा अनुभव है। सावधानी—जागरूकता—रखते-रखते व्यक्ति की ग्रन्थिया टूटने लगती है, कषाय मिटने लगते है। यह साधना की चौथी भूमिका है। यहा योग मे शुभता आ जाती है। पाचवी भूमिका पर कषाय भी टूट जाते है और साधक केवल योग मे, शुद्ध योग मे जीने लगता है। और अन्त मे जब योग भी टूट जाता है तो आदमी अयोग हो जाता है। वह शरीर से, दु ख से, नरक से, पशुत्व से सर्वथा मुक्त हो जाता है।

भले ही जैन लोग अयोग को अपना गतव्य मानते है पर उस तक पहुचने के लिए उन्हे भी योग का सहारा लेना ही पडता है। यही अभ्यास है। इस दृष्टि से योग शरीर और आत्मा का सतुलन है। शरीर है तो उसे खाने के लिए क्या दिया जाए, कितना दिया जाय, किस समय दिया जाय, कैसे दिया जाए आदि-आदि जो बाते है, ये आदमी को योग से प्राप्त होती है।

योग का अर्थ है जोड। जहा शरीर और आत्मा का जोड़ शुरू हो जाता है, वहा से योग शुरू हो जाता है। पशु के योग नही होता, क्योकि उसके पास आत्मा की सज्ञा नही है। वह खाते समय कोई विवेक नही रख सकता। अलबत्ता पेट भर जाने के बाद वह खाना बद कर देता है। पर आदमी की यह विशेपता है कि वह पेट भर जाने के बाद भी खाता रहता है। यह मनुष्यता नही, पशुता से भी आगे की यात्रा है। पर मनुष्य की यह विशेपता भी है कि वह खाते समय विवेक कर सकता है। यह जो खाने और नही खाने का विवेक है, वही योग है। इसी तरह उठने-बैठने, बोलने-चालने तथा व्यवहार मे इस भेद को समझ लेना तथा उस लय पर अपने जीवन-सगीत को गुनगुनाना ही योग है।

मनुष्य के पास सुख भी है और दु.ख भी है। यद्यपि पशु के पास भी सुख-दु ख है, पर उसकी चेतना इतनी आच्छन्न है कि उसके सुख-दु ख की अनुभूति अवचेतन मानस के स्तर पर रहती है। जब भी मनुष्य अपने सचेतन मानस से सुख और दु ख की सधि को जान लेता है वह योग मे प्रवेश कर जाता है। सुख-दु:ख से पार चले जाना अयोग है, उनमे सतुलन बिठा लेना योग है।

इस तरह योग का अर्थ है—सतुलन। जो व्यक्ति सतुलित जीवन जीना चाहता है, उसे योग की शरण मे आना ही पड़ेगा। इस अर्थ से द्वैत का जीवन जीते हुए भी व्यक्ति शाति का दर्शन-स्पर्शन कर सकता है।

कायगुप्ति का शरीरशास्त्रीय अध्ययन

कायगुप्ति को समझने के लिए काया को समझना जरूरी है। जैन तत्त्व ज्ञान के अनुसार काया पाच प्रकार की होती है—औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस् और कार्मण। वर्तमान मे हमे औदारिक-हाड, मास वाले शरीर का ही विशेष परिचय है। यद्यपि अव तैजस् ओर वैक्रिय शरीर पर भी कुछ शोध-खोज हो रही है पर काय गुप्ति को समझने के लिए हमे औदारिक शरीर को ही विशेप रूप से समझना होगा। इसके साथ थोडा तैजस् शरीर पर भी विचार करना होगा।

औदारिक शरीर

लन्दन के डॉ० थामसन लासन ने मनुष्य शरीर के विविध रासायनिक द्रव्यो का पृथक्करण कर वताया है—एक दस स्टोन भार वाले औसत मनुष्य के शरीर मे १० गैलन पानी, ७ कपडा धोने की साबुन की टिकिया जितनी चर्बी, २ पेंसिलो मे काम आ सके उतना कार्वन, २२०० दियासलाई की तीलियो जितना फासफोरस, एक छोटी कील जितना लोहा, कुत्ते के पिस्सुओ को नष्ट कर सके उतनी गधक ओर मुर्गी के पिंजरे पर पोता जा सके उतना चूना—वस इतना ही है मनुष्य का भौतिक शरीर।

और थोडा खोलकर समझे तो पता लगेगा—जन्म के समय शिशु मे ३०५ हड्डिया होती है जो वडे होने पर घटकर २०५ रह जाती है। हड्डियो की इस कमी का कारण है—धीरे-धीरे १०० हड्डिया दूसरी हड्डियो मे मिल जाती है। सारे शरीर मे लगभग १०० जोड होते है जिन्हे ६५० पेशिया हरकत मे लेती है। चलते समय जघा पर ६-४५ वर्ग से० मी० (वर्ग इच) दवाव पडता है। फिर भी औसत शहरी आदमी जीवन भर मे लगभग १६००० किलोमीटर तथा देहाती आदमी ४८००० किलोमीटर की यात्रा कर लेता है।

हमारे शरीर मे ५७ प्रतिशत जल, २० प्रतिशत खनिजांश, २३ प्रतिशत चर्वी-प्रोटीन-कार्बोहाइड्रेट है। प्रतिदिन १० खरव लाल परमाणु नष्ट होते है। एक यात्रा देह के भीतर चलती रहती है। धमनियो, शिराओ और कोशिकाओ

की कुल लम्बाई ९६,५४० किलोमीटर है। उनमे १० पिंट खून प्रति मिनट फिकता रहता है। प्राणवायु ऑक्सीजन को ग्रहण कर उसे रग-रग मे पहुंचाने का काम करती है।

खून मे २५ खरव लाल और श्वेत कोगिकाए होती है। त्वचा मे ४० लाख स्पर्श-सवेदी कोशिकाए तथा अन्य सब मिलाकर ६०० से १००० खरव तक कोशिकाए मानव शरीर मे कूती गयी है।

वैक्रिय शरीर

कभी-कभी कुछ मनुष्यो की ऐसी विभिन्न रूपाकृतिया दिखाई देती है जो मनुष्य की आकृति से मिलती-जुलती तो है पर उससे भिन्न प्रकार की होती है। वे मानव देह की तरह त्रि-विस्तारीय न होकर द्वि-विस्तारीय चिपटे तरीके की होती है। ऐसा लगता है मानो किसी चित्र को मोडकर पुन खोला गया हो। ये भौतिकी कृत चित्रो (Materialized Drawings) की तरह दिखाई देती है। जी० डी० फोन्टेनी नामक एक अनुसधानकर्त्ता ने इस प्रकार की रूपाकृतियो के चित्र भी लिये है। ऐसा समझा जाता है कि मानवीय देह से इक्टोप्लाज्म (Ectoplasm) नामक एक द्रव्य निकलता है और वह सम्पूर्ण देह या अग विशेष का आकार लेकर पुन उसी मे विलीन हो जाता है। वे रूपाकृतिया आकार, वाणी और ऐन्द्रियिक क्षमताओ से मुक्त होती है।

इस पदार्थ शब्द के आविष्कर्त्ता प्रख्यात नोबल पुरस्कार प्राप्तकर्त्ता शरीरवेत्ता प्रो० चार्ल्स रिचेट है। उन्होने वर्षो तक परख-नलियो मे सूक्ष्मदर्शक यत्रो से परीक्षण कर उसकी सत्ता को असदिग्ध रूप से प्रमाणित किया है। उन्होने इस सम्बन्ध मे सी० नी० माथे ब्राड नामक एक नारी देह पर अनेकानेक प्रयोग भी किये है।

इक्टोप्लाज्म एक प्रकार का कोशयुक्त द्रव्य (Cellular Matter) है। इसका निर्गमन माध्यम (जिस पर प्रयोग किया जाता है) की देह से तीव्र पीडा व गति के साथ होता है।

रिचेट की ही तरह डॉ० क्राफोर्ड, कैथलीन गोलीधर विलियम क्रुक, डॉ० वानस्रेक नोजिग, जी० डी० फोन्टेनी आदि अनेक लोगो ने इस सम्बन्ध मे प्रयोग प्रस्तुत किये है। नृतत्व सोसाइटी, लिपरपुल के अध्यक्ष डॉ० हिर्समैन ने चित्रो के अलावा लम्बाई-ऊचाई के माप, वजन, नाडी की धड़कनो आदि के सम्बन्धित अनेक महत्त्वपूर्ण तथ्यो से वीसवी सदी के विज्ञान जगत् को परिचित किया है।

यद्यपि ये सारे प्रयोग विज्ञान मे पूर्ण रूप से सम्मत नही है पर फिर भी जैन धर्म सम्मत वैक्रिय शरीर के विषय मे एक सभावना को व्यक्त करते है।

मनुष्य शरीर लगभग पचहत्तर हजार अरब कोषो का समन्वय है। हर जीवकोप के आर-पार ६० से ९० वोल्ट विद्युत् विभव होता है। इस प्रकार मानव शरीर एक शक्तिशाली साधन-सम्पन्न बिजलीघर है। हर अवयव की गतिविधि, हृदय की धडकन, मासपेशियो का आकुचन-सकुचन, मस्तिष्क मे सदेशो व प्रेरणाओ का आवागमन, अत स्रावी ग्रथियो से रसस्रावो का उत्पादन आदि इसी विद्युत् के क्रिया-कलाप है। वैज्ञानिक बताते है कि प्रत्येक मनुष्य अपने वायुमडल से ऋण विद्युत् आयनो को श्वास द्वारा सोखता रहता है। ये आयन (विद्युत् आविष्ट कण) रक्त के माध्यम से शरीर के सभी भागो मे फैलकर समस्त ऊत्तको और कोषो को ऋण-विद्युत् से सतृप्त कर देते है। ये विद्युत् आयन त्वचा से निष्कासित हो वातावरण मे फैल जाते है। इस प्रकार वैज्ञानिक फ्रेड ब्लैस के अनुसार शरीर मे एक विद्युत् चक्र सतत चलता रहता है।

सुषुम्ना को वैज्ञानिक स्थायी विद्युतीय द्वि-ध्रुव केन्द्र (Permanent Electric Pole) मानते है। इसका निचला हिस्सा जो मूलाधार चक्र मे अवस्थित (कोडा इक्वाइना स्थित) ऋण विद्युत् आवेशयुक्त तथा ऊपरी सिरा सहस्रार (सेरेब्रम) घन विद्युतधारी है। असामान्य स्थिति मे यह प्रवाह नीचे से प्रबल होकर उल्टी दिशा मे अर्थात् ऊपर की ओर ऊर्ध्वगमन करता बह सकता है व मस्तिष्क को सतत जागृत व अतिसामर्थ्यवान बनाये रख सकता है। वैसे सामान्यत जीवधारियो मे इसका प्रवाह ऊपर से नीचे होता है। मात्र मनुष्य को यह सुविधा प्राप्त है कि वह प्राण-प्रहार-विद्युत् केन्द्रीकरण के माध्यम मे लोअर पोल को सशक्त बनाकर अपने प्रवाह को क्षरण से रोककर ऊर्ध्वगमन की ओर दौडा दे। वैज्ञानिको का चिंतन अभी इस विषय मे और भी सभावनाओ को लेकर गतिशील है और अध्यात्म विज्ञान तो इन मान्यताओ को पहले ही प्रतिपादित करता आया है कि ओजस का सग्रह किया जाता है व यही मन शक्ति-सकल्प बल को बढाकर मनुष्य के तेजोवलय को प्रभावशाली बना देता है। यह आटो और कुछ नही, त्वचा से, आखो से, वाणी से सतत प्रवाहित होते रहनेवाला विद्युत्-प्रवाह है।

शरीर मे कुल मिलाकर एक लाख वोल्ट प्रति सेटीमीटर का विद्युत् दबाव होता है। अन्य जीवधारियो की भाति यह भी श्वास से, त्वचा से, जननेन्द्रियो से क्षरित हो वातावरण मे बहता रहता है। यदि इस विद्युतधारा को सुनियोजित किया जा सके तो इसी से उस चुम्बकत्व का निर्माण किया जा सकता है जो व्यक्ति को अपूर्व शक्ति से सम्पन्न बनाता है।

कहना न होगा कि असख्य सामर्थ्यो का असीम भाडागार मनुष्य के अतराल

मे विद्यमान है। यह चेतना क्षेत्र का एक वृहत्तर महासागर है, जिसमे हर स्तर की सामर्थ्य खोज निकाली जा सकती है। दृश्यमान समस्त विभूतियो, सफलताओ का उपार्जन एव उपयोग इसी आत्मवल रूपी सामर्थ्य के सहारे से सभव हो पाता है।

यहा आकर हम विज्ञान के साथ अध्यात्म की भी चर्चा कर सकते है। काय-गुप्ति वास्तव मे इस चर्चा के साथ वहुत सूक्ष्मता से जुडी हुई है। भगवान् महावीर ने कहा है—हत्थ सजए वाय संजए, काय सजए सजिदियस्स। अज्झप्परए सुसमाहिप्पा, मण वय कायससवुडेजेस भिक्खु।

जिसने हाथो, पैरो, वाणी, काया तथा इन्द्रियो का सयम कर लिया है उस अध्यात्मरत व्यक्ति की आत्मा समाधि को प्राप्त हो जाती है।

पिंजरे मे वन्द चिडिया दिन भर मे जितनी वार पाव फडफडाती है, उतने मे शायद वह कई मील की यात्रा कर सकती है। मगर उसकी सारी सक्रियता वेकार हो जाती है। क्योकि वह घेरे मे वन्द है। अर्नेस्ट हेमिंग्वे ने ठीक ही कहा था—'क्रियाशीलता को क्रिया समझने की भूल मत करना। इसी वात को दूसरे शव्दो मे कहना पडे तो यो कहा जा सकता है—'अंधाधुध क्रियाशीलता मत करो।' वास्तव मे यह कायगुप्ति का ही समर्थन-सकेत है। आदमी अपनी वहुत सारी ऊर्जा विना मतलव यो ही गंवा देता है। यदि उसका सरक्षण किया जा सके तो वह अपने जीवन को और अधिक न केवल लम्वा ही अपितु आनन्द-पूर्ण भी बना सकता है। इसीलिए उत्तराध्ययन सूत्र मे कायगुप्ति पर विवेचन करते हुए उसे 'सव्व दुक्खाण मतकर'—अर्थात् समस्त दु खो का अन्तकर कहा है।

कायगुप्ति का एक महत्त्वपूर्ण पहलू है, थकान को दूर कर नयी ऊर्जा प्राप्त करना। इस दृष्टि से विज्ञान मे भी काफी शोध-खोज हुई है।

थकान का कारण और निवारण पूरी तरह समझने के लिए यह जानना आवश्यक है कि शरीर किस प्रकार काम करता है। शरीर जव काम करता है तो इसके अगो की मासपेशियो मे खिचाव उत्पन्न होता है। वार-वार खीचने अथवा अधिक देर तक खिचे रहने के कारण मासपेशिया थक जाती है। इस थकान का वास्तविक कारण क्या है? मासपेशियो को कार्य करने के लिए ऊर्जा चाहिए। यह ऊर्जा मासपेशियो मे एकत्रित 'ग्लूकोनेट' नामक पदार्थ से प्राप्त होती है।

शरीर को जो भोजन प्राप्त होता है वह पचकर शक्कर वन जाता है और रक्त के साथ यह मासपेशियो मे पहुचती है। मासपेशियो मे यह शक्कर ग्लूकोनेट पदार्थ मे परिवर्तित होकर वही एकत्रित होती रहती है। जिस समय मांसपेशिया काम करती हैं उस समय यह ग्लूकोनेट ऑक्सीजन के साथ सयोग करके

'लैक्टिक एसिड' तथा कार्बन डाई-ऑक्साइड गैस बनाता है। यह कार्बन डाई-ऑक्साइड गैस फेफड़ो मे चली जाती है जहा से श्वास द्वारा यह बाहर निकल जाती है। लैक्टिक एसिड मासपेशियो मे ही रह जाता है। जितना ही अधिक शारीरिक श्रम किया जाता है उतना ही अधिक ग्लूकोनेट खर्च होता है, इसके लिए उतना ही अधिक आक्सीजन चाहिए। इसीलिए शारीरिक कार्य करते समय सास की गति तेज हो जाती है।

मासपेशियो मे जो लैक्टिक एसिड एकत्रित होता है वह पुन ऑक्सीजन के साथ सयोग करके ग्लूकोनेट बनाता है। सामान्य स्थिति मे पेशियो मे ग्लूकोनेट तथा लैक्टिक एसिड की मात्रा मे सतुलन रहता है। जितना ग्लूकोनेट खर्च होता है उतना ही नया ग्लूकोनेट बनता रहता है। लेकिन अधिक शारीरिक श्रम से यह संतुलन बिगड जाता है। मै बता चुका हू कि ग्लूकोनेट खर्च करने तथा उसका पुनर्निर्माण करने दोनो ही क्रियाओ मे ऑक्सीजन की आवश्यकता पडती है। सामान्य दर से काम करते समय शरीर मे इतना ऑक्सीजन पहुचता रहता है कि ग्लूकोनेट की खर्च होने वाली मात्रा तथा उसकी पुनर्निर्मित होने वाली मात्रा मे सतुलन बना रहे। जब अत्यधिक तेजी के साथ काम किया जाता है तब ग्लूकोनेट का खर्च बढ जाता है। अब शरीर मे इतनी यथेष्ट आक्सीजन नही पहुच पाती कि वह ग्लूकोनेट के खर्च से बहुत अधिक मात्रा मे उत्पन्न होने वाले लैक्टिक एसिड को पुन. ग्लूकोनेट मे बदल सके। फलस्वरूप पेशियो मे ग्लूकोनेट की मात्रा घटने लगती है और लैक्टिक एसिड की मात्रा बढने लगती है। इससे 'थकान' उत्पन्न होती है।

शारीरिक थकान मिटाने के उपाय

यदि किसी प्रकार ग्लूकोनेट की मात्रा शीघ्र बढाई जा सके तो थकान कम हो जायेगी। इसका एक उपाय तो यह है कि शरीर को बाहर से अधिक मात्रा मे शक्कर दी जाये। यदि थका हुआ व्यक्ति ग्लूकोज, शहद, गुड या शक्कर का शरबत पियेतो शरीर मे अतिरिक्त शक्कर पहुच जाती है, जिससे ग्लूकोनेट की मात्रा बढ जाती है और थकान कम हो जाती है। छोटे बच्चे दिन-भर खेलते रहते है, जिसमे काफी शारीरिक शक्ति व्यय होती है, इसलिए उन्हे अधिक शक्कर की आवश्यकता होती है।

शारीरिक थकान को दूर करने का दूसरा उपाय है कि ग्लूकोनेट का व्यय रोका जाए तथा लैक्टिक एसिड से ग्लूकोनेट के पुनर्निर्माण मे वृद्धि की जाये। इसे आराम के द्वारा पूरा किया जा सकता है। मनुष्य जब लेटा होता है तब शारीरिक शक्ति का कम से कम व्यय होता है, अर्थात् इस समय ग्लूकोनेट की न्यूनतम मात्रा का व्यय होता है। इसलिए शारीरिक थकान को दूर करने के लिए लेटकर

विश्राम किया जाता है। सोते समय सास की गति भी कुछ मद हो जाती है। इससे शरीर मे कम ऑक्सीजन पहुचती है। इसलिए वहुत सोने से भी अधिक थकान लगती है और जागने पर जमुहाई आती है। इस समय व्यक्ति मुह वहुत ज्यादा खोलकर अधिक मात्रा मे शुद्ध वायु अन्दर खीचता है और इस प्रकार ऑक्सीजन की कमी को दूर करता है।

शारीरिक थकान कम हो, इसके लिए काम करने के ढग पर विचार करना आवश्यक है। चाहे वैठकर काम किया जा रहा हो अथवा खडे होकर, रीढ की हड्डी सीधी रहना आवश्यक है। इससे थकान कम होती है। वार-वार शारीरिक स्थिति वदलने से, जैसे वार-वार झुकने अथवा उठने-वैठने से अधिक थकान महसूस होती है। इसके अतिरिक्त यह पाया गया है कि यदि कोई काम लयात्मक गति से किया जाये तो शारीरिक थकान कम होती है। इसीलिए ग्रामीण स्त्रिया चक्की पीसते समय गाती रहती है।

शारीरिक थकान के निवारण की दिशा मे भी वहुत अध्ययन किया गया है। इससे एक निष्कर्ष यह निकलता है कि वहुत अधिक थकने के वाद एक वार लम्वे समय तक विश्राम करने की अपेक्षा थोडा थकने पर ही थोडी देर तक विश्राम करना अधिक लाभदायक रहता है। जव शरीर की पेशिया वहुत अधिक थक जाती है तव उन्हे पूर्णत. स्वस्थ होने मे वहुत अधिक समय लग जाता है। कभी-कभी तो इनमे ऐसी क्षति हो जाती है जो ठीक ही नही हो सकती।

मनुष्य एक शिशु के रूप मे जन्म लेता है। २०-२५ वर्ष की अवस्था तक उसके शरीर का विकास होता है, पर उसके वाद धीरे-धीरे उसमे ह्रास होने लगता है और शरीर के अवयव शिथिल पडने लगते है। वैसे 'जीवेम शरद शतम्' की उपनिपदो की उक्ति के अनुसार मनुष्य की सामान्य आयु १०० वर्ष मानी गयी है। पर आजकल तो वह सामान्य रूप से ७० वर्ष ही आकी जाती है। इसके दो ही अर्थ हो सकते है—या तो मनुष्य अपनी आयु को पूर्ण रूप से नही भोग पाता है या फिर आयु का यह कालमान ही कालक्रम से कम हो गया है। पर अनेक प्रयोगो से यह तो पता चला है कि यदि आदमी अपने रहन-सहन को, आचार-व्यवहार को नियमित रखे, श्वास पर नियन्त्रण रखे तो वह सौ वर्ष जी सकता है। एक जिज्ञासु ने प्रश्न किया—

शतायुरुक्त. पुरुप, सर्व वेदेपु वै यदा।
नाप्नोत्यथैतन् सर्व, आयु' केनेह हेतुना॥

जव आदमी की आयु १०० वर्प वताई गयी है तो आदमी उतनी आयु क्यो नही प्राप्त करता ?

उत्तर देते हुए वताया गया—

अतिमानोतिवादश्च, तथाऽयोग नराधिप ।
क्रोधश्चात्म विधित्सा च, मित्रद्रोहश्च तानि षट् ।
एत एवासयास्तीक्ष्णा कृत्यत्यायूंपि देहिनाम् ।
एतान्यात्मवान्हन्ति, नमृत्युर्भद्र मस्तु ते ॥

अत्यधिक मान, वाद-विवाद, अयोग, क्रोध, आत्मख्यापन तथा मित्रद्रोह—ये छ आसय आदमी की आयु को वेरहमी से काट डालते है। जिस व्यक्ति मे आत्म-जागृति हो जाती है उसकी आयु को वे नही काट सकते। भद्र! तुम्हारा कल्याण हो, मृत्यु तुम्हे न घेर पाये।

सचमुच उपर्युक्त कथन भी अपनी जगह पर वहुत माननीय है।

जैन धर्म के अनुसार मृत्यु का निर्णय आयुष्य कर्म के साथ वधा हुआ है। पर वहा यह भी वताया गया है कि आदमी अपने आयुष्य को कम भी कर सकता है। इस दृष्टि से जो पूर्ण श्वासोच्छ्वास लेता है वह अपनी पूर्ण आयु को भोग सकता है। जिसकी श्वासक्रिया ठीक नही है, वह समय से पहले ही मृत्यु को आमन्त्रित कर लेता है।

पर यह निश्चित है कि हमारे शरीर पर जरा और मृत्यु का आक्रमण हर क्षण होता रहता है। मृत्यु की वात हम वाद मे करेंगे, पहले वुढापे के सम्वन्ध मे थोडा विचार कर ले। वुढापा जीवन का एक नाजुक दौर है। सालो तक सघर्प करती मानव देह एक सीमा पर आकर शारीरिक-मानसिक दृष्टि मे कमजोर हो जाती है। इसमे कोई शक नही कि वुढापा एक शारीरिक प्रक्रिया है, पर इस प्रक्रिया के मनोवैज्ञानिक पक्ष को भी नजर-अन्दाज नही किया जा सकता। वहुत सारे लोग ८०-९० वर्प की उम्र मे भी दैनिक क्रिया-कलापो को आसानी ने कर लेते है तो कुछ लोग ६०-६५ मे ही थक जाते है। प्रोगेरिया रोग से ग्रस्त १३ साल का वच्चा भी वूढा हो सकता है तो कुछ लोग ५० वर्प की उम्र मे वूढे होते है तथा दूमरे ७५ वर्प के भी युवा होते है। अगर व्यक्ति शुरू से ही इस मानव-रूपी मशीन की देखभाल ठीक से करता रहे तो वाद मे उसे कम कठिनाइयो का सामना करना पडता है।

जो जन्म लेता है, उसे मरना ही पडता है। वुढापा जीवन की कुरूपतम सचाई है। फ्रामीसी उपन्यामकार अनातोले ने ठीक ही कहा है—हम पैदा होते हुए वूढे होना शुरु हो जाते है। हर क्षण हमारा शरीर क्षीण होता रहता है। शरीरशास्त्री इस वात की खोज मे है कि शरीर को क्षरित होने से वचाया जाये। शरीर का क्षरण दो रूपो मे अभिव्यक्त होता है—एक जरा के रूप मे दूसरा मृत्यु के रूप मे। वास्तव मे देखा जाये तो वुढापा मृत्यु की ही पूर्व सध्या है।'

जैन दर्शन के अनुमार कुछ प्राणी ऐसे भी होते है जिन्हे वुढापा नही घेरता। उनकी पारिभापिक सज्ञा देव है। उनका नाम ही है निर्जर, अर्थात् जिनको

जरा का स्पर्श नही होता। पर मृत्यु के भय से वे भी नही बच पाते। उन्हें मृत्यु-भय किस तरह प्रभावित करता है, इस विषय का पूरा विवेचन जैन-साहित्य मे प्राप्त होता है।

बुढापे मे कमर झुक जाती है, सिर के काले घने बाल भी सफेद होकर झड़ने लगते है, हाथ-पैर और गर्दन मे कम्पन शुरू हो जाता है, गति धीमी पड जाती है, कदम डगमगाने लगते है, शरीर का सन्तुलन बिगड़ जाता है, मुह मे से लार टपकने लगती है, दृष्टि मद पड जाती है, सुनाई भी कम देने लगता है, गर्मी-सर्दी की पीडा की सवेदन-क्षमता का ह्रास हो जाता है। शरीर का तापमान सामान्य तापमान से २ डिग्री फारेनहाइट कम हो जाता है। सूघने की शक्ति घट जाती है, फेफडे सिकुड जाते है, जोड गठिया से ग्रस्त हो जाते है। नाडी की गति मन्द पड जाती है, रक्तचाप बढ जाता है। शरीर के जल और खनिज का अनुपात भी कम हो जाता है। ७० वर्ष तक शरीर मे जल का अनुपात युवावस्था से १० प्रतिशत कम होता है। कोशिकाओ के अनुपात मे ७ प्रतिशत की कमी तथा अस्थियो मे खनिज का अनुपात २ प्रतिशत कम हो जाता है। आचार्य यशोविजयजी ने उस अवस्था के चित्रण मे कहा है—'प्रगतिमासते शिरोरुह ललित मनुजशिरो वलिपालेत। को विदधाना मूर्धनमास प्रभवति रोहुजरसम्।'

यह ठीक है कि यदि शरीर की ठीक से देखभाल की जाये तो उसे बूढा होने से काफी बचाया जा सकता है। अध्ययन से इस बात का पता लगा है कि उच्च जीवनस्तर वाले देशो तथा स्थानो मे निम्न जीवन-स्तर वाले देशो और स्थानो की अपेक्षा जीवन लम्बा है। पर यह भ्रम उचित नही होगा कि वहा के लोगो का बुढापा ज्यादा सुखमय है। सम्पन्नता आने के बाद ही व्यक्ति की जीवन-शैली मे जो बदलाव आता है वह अकसर उसे मदिरा पान, धूम्रपान, कम शारीरिक श्रम, गलत खान-पान से जोड देता है जिनका स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। शहरीकरण तथा औद्योगिक प्रदूषण का कुप्रभाव सबसे ज्यादा बुढापे मे ही प्रकट होता है। इन सबका देह के किस अग पर ज्यादा प्रभाव पडा है, इसकी खोज करते-करते अन्त मे वैज्ञानिक इस परिणाम पर पहुचे है कि बुढापे की जड देह की इकाई अर्थात् कोशिकाओ मे ही कही मिलनी चाहिए। इस दृष्टि से कोशिकाओ का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है। यह सिद्ध हो चुका है कि कोशिका का केन्द्रक D.N A अणु मे जीवन-विकास तथा रख-रखाव सम्बन्धी सभी मूलभूत सूचनाए निहित रहती है। कोशिका-विशेष के भीतर एक साथ लगातार होते रहने वाले कोशिकीय पदार्थो विशेष रूप से प्रोटीन के विघटन तथा निर्माण की नाना क्रियाओ के लिए सदेशवाहक का काम R.N.A करते है। इसी दृष्टि से वैज्ञानिक कोशिकाओ मे जीवन-नियत्रण क्रियाविधि की गूढ लिपि को समझने का प्रयत्न कर रहे है। यदि वास्तव मे इन नियत्रण-नियमो

को समझ लिया जाये तो अन्तत हमारे जीवन और जरा की लगाम मनुष्य के हाथ मे आ जायेगी, ऐसा वैज्ञानिको का विश्वास है।

इस तरह कोशिकीय अध्ययन का अभियान दुनिया-भर की अनेक प्रयोगशालाओ मे अनेक प्रकार से चल रहा है। अभी तक बुढापे के बाहरी चिह्न मिटाने पर सबसे ज्यादा जोर दिया जाता था। खिजाब से लेकर आधुनिक डाइ तक उपलब्ध है। प्लास्टिक सर्जरी से चेहरे की झुर्रियो को मिटाया जा सकता है। पर बहुत लोगो को यह पता नही है कि बुढापे से लडने के लिए आज कितने हथियारो पर ओप चढाई जा रही है। वैज्ञानिको ने चूहो को ठडे मे रखकर यानी शीत-निष्क्रियता लाकर उन्हे दीर्घ जीवन देकर जीवकोशो के ह्रास पर अर्ध-विराम लगाया है।

इसी तरह कुछ वर्षो पहले परड्यू युनिवर्सीटी के डॉ० रावर्ट मेयर ने अपनी प्रयोगशाला मे वन्दरो के मस्तिष्क के भीतर थर्मोस्ट लगाकर वहा के तापमान को कुछ डिग्री से नीचे रखकर जीवन की अवधि को वढाने मे सफलता हासिल की थी।

यह काफी हद तक मान लिया गया है कि चिर-यौवन तथा वुढापे की कहानी का शरीर अन्त स्रावी अर्थात् इण्डोक्राइन तत्रो से गहरा सम्बन्ध है। पीयूष ग्रन्थि (हाइपोथेलमी) तथा अन्य अन्त स्रावी ग्रन्थियो यथा अधिवृक्क ग्रन्थि (एड्रिनल)। अवटु ग्रन्थि (थायराइड) और जनन ग्रन्थि (गोनाड) का परस्पर प्रभाव काफी हद तक जवानी तथा वुढापे के सम्बन्धो की व्याख्या करता है। पीयूष ग्रन्थि के नियत्रण मे इन ग्रन्थियो से नि सृत होने वाले विविध अन्त स्राव (हार्मोन) नि सदेह अनेकानेक जीवन-क्रियाओ का समन्वयात्मक नियत्रण करते है।

अन्त स्रावो का यह जीवन-रक्षी सतुलन एक अत्यन्त जटिल तथा सवेदनात्मक प्रक्रिया है। पीयूप ग्रन्थि अथवा अधिवृक्क ग्रन्थि के हार्मोनो के कभी न कभी किसी न किसी की अनावश्यक घटत-वढत के कारण शरीर मे ऐसे परिवर्तन आ सकते है जो जवानी को वुढापे की ओर धकेल सकते है।

कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय के फ्रेडरिक सी० लुडविग ने शल्य तकनीकी द्वारा युवा चूहो के रक्त को बूढे चूहे के रक्ताभिसरण से मिलाकर उसे यौवन प्रदान किया है।

इस तरह कोशिकीय सशोधन के अनेक प्रयास दुनिया की अनेक प्रयोगशालाओ मे जरा-व्याधि पर नियत्रण के लिए चल रहे है। पर जीवन का अभिप्राय केवल जीना भर नही है वल्कि सक्रिय रहकर उसकी उपलब्धियो के आनन्द का उपभोग करना है।

भारतीय विचार-दर्शन मे इन वातो पर वहुत पहले ही कुछ निष्कर्ष प्रस्तुत

किये गये थे। यद्यपि उन्हे वैज्ञानिक पृष्ठभूमि पर प्रस्तुत करने के लिए आज हमारे पास साधन-सामर्थ्य नही है, पर फिर भी जिस तरह से नये तथ्य उभर रहे है उससे पुरानी बातो का कुछ अर्थ समझ मे आने लगा है। धमनियो मे सख्ती और कडापन लाने वाले कोलेस्टेरोल को घटाने के लिए केवल व्यायाम और घी-तेल, मिर्च-मसाले से मुक्त सादा शाकाहार आज बहुत उपयोगी सिद्ध हो रहा है। हाल ही मे अमेरिका मे बसे एक भारतीय डॉक्टर ने अपनी अमेरिकी पत्नी के साथ खासा क्लिनिक वहा चलाया हुआ है जिसमे बिना नमक, बिना चीनी के, बिना तला सादा भोजन खिलाकर न केवल हृदय रोगो को ही ठीक किया है, अपितु बुढापे मे फिर से जवानी लाने का भी दावा किया है। इस जीवन-पद्धति के अनेक प्रयोग भी पश्चिम मे लोकप्रिय हो रहे है। महावीर ने ठीक ही कहा है—जायाए फस मेसेज्जा, रस गिद्धे न सिया भिक्खाए—साधक केवल शरीरयात्रा चलाने के लिए भोजन करे रसगिद्ध न बने।

जरा-विज्ञान के अनुसधान से एक तो यह पता चला है कि लम्बी आयु पाने का गुण विरासत मे मिल सकता है। जिनके माता-पिता ८०-९० तक पहुचे हो, उनकी सन्तानो के भी अधिक जीने की सम्भावना है। जो अच्छे बीज के रूप मे अपना जीवन शुरू करता है, उसके उम्र की दौड मे आगे निकलने की पूरी सम्भावना है।

दूसरी बात यह पता चली है कि 'कम खाओ और ज्यादा जीओ।' यह बात किसी धर्मशास्त्र की नही है अपितु वैज्ञानिको ने प्रयोगो के आधार पर इस सत्य का उद्घाटन किया है। उन्होने चूहो पर इसके अनेक प्रयोग किये है। जिन चूहो को उपवास पर रखा गया, उनकी उम्र लम्बी पायी गयी। इसका यह अर्थ नही है कि पौष्टिक आहार का महत्त्व कम हो गया है। प्रारम्भ के पाच वर्षो में यदि पूरा पोषक आहार न मिले तो बुढापा जल्दी आता है। पर फिर भी इतना तय है कि आज मनुष्य की खाने की जो आदत बन गयी है उस पर सयम करना अत्यन्त आवश्यक है।

बहुत सारे लोग बुढापे को गरीबी से जोडते है। इसीलिए ऐसा समझा जाता है कि सम्पन्न देशो मे बुढापा कम आता होगा पर इस गलतफहमी मे पडना उचित नही है। क्योकि सम्पन्नता आने के साथ ही व्यक्ति की जीवन-शैली मे जो बदलाव आता है, वह उसे अकसर मदिरापान, धूम्रपान, कम शारीरिक श्रम तथा गलत खान-पान से जोड देता है, जिनका स्वास्थ्य पर बुरा असर पडता है। शहरीकरण तथा औद्योगिक प्रदूषण का कुप्रभाव सबसे ज्यादा बुढापे मे ही प्रकट होता है।

इसमे कोई शक नही कि बुढापा एक शारीरिक क्रिया है मगर इस प्रक्रिया के मनोवैज्ञानिक पक्ष को भी नकारा नही जा सकता। इसी दृष्टि से भगवान् महावीर

ने कहा है—

'जरा जाव न पीलेई'—जब तक बुढापा तुमको घेर न ले, तब तक धर्म का आचरण करो। धर्म का आचरण मनुष्य के मन मे आनन्द का स्रोत बहाता है। सचमुच मे सही तरीके से धर्माचरण करने वाले लोग बुढापे मे प्रकट होने वाले मनोवैज्ञानिक पक्ष को सही तरीके से हृदयगम कर उस क्षण भी आनन्द-मग्न रह सकते है।

वृद्धावस्था नियति का चक्र नही है इसे नियमित व्यायाम एव अभ्यास द्वारा कुछ वर्ष के लिए रोका जा सकता है। शरीरशास्त्री इस विषय मे गहरी खोज कर रहे है। लन्दन के डॉ० एलेक्स कम्फर्ट अपनी पुस्तक—'एजिंग : ए बायोलोजी ऑफ सेनीसेन्स' मे कहा है—जैसे दातो की पूरी सुरक्षा करते रहने के बाद भी उनके खराब हो जाने पर नकली दात लगाये जा सकते है, वैसे ही शायद कभी शरीर की क्षत-विक्षत कोशिकाओ के साथ भी किया जा सकेगा—अभी तो बुढापा क्यो आता है, किस तरह आता है, यही समझ रहे है। नियत्रण की बात तो बाद मे उठती है—फिर भी यदि मानव की आयु मे हम ५ वर्ष जोडने मे भी सफल हो गये या ऐसा कुछ कर सके कि ७५ का आदमी ७० वर्ष का लगे, तो हम समझेंगे कि हमारे प्रयास निष्फल नही गये।

यद्यपि भगवान् महावीर की दृष्टि से दीर्घ जीवन कोई बहुत बडी उपलब्धि नही है, उनकी दृष्टि मे सार्थक जीवन बहुत बडी उपलब्धि है। जीवन के साथ-साथ सार्थक मृत्यु भी उनकी दृष्टि मे बहुत बडी उपलब्धि है। इसीलिए वे दीर्घ जीवन पर आकर नही रुकते अपितु सार्थक जीवन की तरफदारी करते है।

वास्तविक लाक्षणिक मृत्यु के क्षण तो एक बिन्दु पर आकर प्रस्तुत होते है पर रूस मे लेबोरेटरी ऑफ रिएनीमेटोलॉजी (पुनर्जीवन प्रयोगशाला) मे कार्यरत डॉ० ब्लादीमीर नेगोवस्की पिछले ४२ वर्षो से यह प्रयोग कर रहे है कि मनुष्य के शरीर को क्षत होने से कैसे बचाया जाये। उनके हिसाब से मनुष्य की शरीर-रचना ऐसी है कि वह १५० वर्ष तक बेरोक-टोक जी सकता है। वे मरणासन्न की लाक्षणिक मृत्यु की अवधि को तीन घटे तक बढाने मे सफल हुए है, जिसके लिए उसे निचले तापमान पर रखा जाता है। यह समय मिल जाने पर डॉक्टर को मरणासन्न को दुरुस्त करने का अवसर मिल जाता है और कृत्रिम श्वास-ऑक्सीजन, विद्युत् झटको, दवाइयो तथा अन्य साधनो से शरीर को दुबारा गतिशील किया जा सकता है।

लेकिन बात यही समाप्त नही होती। आज तो वैज्ञानिक मृत्यु को चुनौती देने की भी तैयारी कर रहे है। अमेरिकी भौतिकशास्त्री रॉबर्ट सी० एटिजर ने अपनी पुस्तक—'द प्रोस्पेक्ट ऑफ इमार्टेलिटी' मे लिखा है—मौत अब अन्तिम घडी नही रही। वह भी एक बीमारी है, जिसका इलाज किया जा सकता है।

साधारणतया सास रुक जाने या धडकन वद हो जाने मात्र को ही मृत्यु कह दिया जाता है। पर आज वैज्ञानिको का कहना है कि इस लाक्षणिक मृत्यु के वाद भी लाश को यदि वहुत अधिक ठडा करके द्रव-नाइट्रोजन मे सुरक्षित रखा जाये तो कभी उसके पुनर्जीवन की सभावना से इकार नही किया जा सकता। इस दृष्टि से क्रायोवायोलोजी के नाम से एक पूरी विज्ञान शाखा काम कर रही है। उनकी सभावना को इस दृष्टि से वल मिल रहा है कि आज शुक्राणुओ, आखो की कोर्निया, त्वचा और अस्थिमज्जा की कोशिकाओ को सुरक्षित रखने के उपाय खोज लिये गये है। अनेक प्रकार की जटिल शल्य चिकित्सा शीत वातावरण मे ही की जाती है। अमेरिका मे लगभग १०० लोगो ने अपने मरने के वाद अपनी लाश को हिमित करने की व्यवस्था कर ली है। यद्यपि क्रायोवायोलॉजी की यह प्रक्रिया वहुत जटिल है, वहुत खर्चा इस पर आता है, इसकी सफलता मे भी लोगो को सन्देह है तथा इसके सामाजिक पहलू पर भी तरह-तरह की चर्चाए हो रही है पर फिर भी यहा आकर यह चर्चा एक आध्यात्मिक रूप भी ग्रहण कर लेती है। भले ही मौत का नकारना सभव न हो पर भारतीय योग मे परकाय-प्रवेश, जड़-समाधि, इच्छा-मृत्यु आदि ऐसी अनेक वाते है जिन्हे शरीर को अधिक समय तक जीवित रखने या सुरक्षित रखने से जोडा जा सकता है। जैन धर्म मे शरीर कोई मुख्य वात नही है, फिर भी साधना की दृष्टि से कायगुप्ति एक महत्त्वपूर्ण वात अवश्य है। कायगुप्ति के माध्यम से शरीर के तापमान को कम करना अवश्य सभव हो सकता है। क्रायोवायोलोजी मे भी तो इसी वात पर वल दिया जाता है। यद्यपि इसमे रासायनिक प्रक्रियाओ द्वारा शरीर को हिमित किया जाता है। पर इससे कुछ हानियो की भी सभावना है। नार्जटाउन विश्वविद्यालय, अमेरिका के प्रो० डेविड राविशन का कथन है—जव तक किसी अग की प्रत्येक कोशिका को सरक्षक रसायन से सुरक्षित नही किया जाता तव तक हिमित करने की यह प्रक्रिया किसी न किसी कोशिका को अवश्य नुकसान पहुचायेगी।

फिर राविशन का कहना है—पूरे अग को जीवित रखने का सवसे अच्छा तरीका कोशिकाओ को अपनी मरम्मत करने की क्षमता का विकास करना है। उन्होने पता लगाया है कि प्रयोगशाला मे कल्चर की गयी कुछ विशेप कोशिकाए विना किसी रासायनिक सुरक्षा के १९६ अश से० ग्रे० तक ठडा करने से हुए नुकसान को खुद ही दुरुस्त कर लेती है। कायगुप्ति द्वारा शरीर के तापमान को इतना कम किया जाना असभव नही है। इस दृष्टि से काय-गुप्ति एक विशेप अध्ययन का विपय वनती है।

कायगुप्ति का अर्थ है—इन्द्रिय व्यापार का निरोध या सयम। जो इन्द्रियो पर संयम कर लेता है वही समाधि-अध्यातम को प्राप्त कर सकता है। उनकी दृष्टि में सांस रोककर जमीन मे डट जाना ही समाधि नही है। वे तो समाधि

उसको कहते है जब मौत आये तो आदमी प्रसन्नतापूर्वक उसे देखते-देखते प्राण त्याग दे। सचमुच मे ऐसी मृत्यु की साधना कायगुप्ति की साधना से ही प्राप्त हो सकती है।

बहुत सारे दीर्घजीवी व्यक्तियो के जीवन मे अनुभव भी इस दिशा मे महत्त्वपूर्ण बनते है।

११५ वर्षीय सत महत गिरि ने दीर्घ जीवन का उपाय बताते हुए कहा—लम्बी उम्र का आसान उपाय है—सयम। शरीर की मशीन के पुर्जे जितने कम घिसेंगे, मशीन उतनी ही अधिक उम्र वाली होगी।

११७ वर्षीय महत हरिचद्र गिरि ने लम्बी उम्र का रहस्य बताया—बडी उम्र पाने का बिलकुल आसान उपाय है—कम सोचो, कम खाओ और सतत ईश्वर-चिंतन करो। महत भैरवपुरीजी ने भी सयम से रहने को ही दीर्घजीवन का रहस्य बताया।

यह ठीक है कि शारीरिक स्वस्थता के लिए कुछ प्रवृत्ति की भी आवश्यकता रहती है। इसीलिए गुप्ति के साथ-साथ भगवान् महावीर ने सीमित प्रवृत्ति पर भी बल दिया है। शरीरविज्ञान भी इस बात का समर्थन करता है। वास्तव मे सीमित और गुप्ति मे सतुलन स्थापित करना ही आनन्दमय जीवन की मूल्यवान उपलब्धि है।

परम वैज्ञानिक महावीर

धर्म एक आचार पद्धति है। मूल मे वह विचार का नही आचार का विषय है। पर हर आचार पहले विचार बनता ही है। इसीलिए उमा स्वाति ने कहा था— सम्यक् दर्शन ज्ञान चरित्राणि मोक्ष मार्ग.। मोक्ष मार्ग अर्थात् धर्म। उसके तीन पहलू है—सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् चरित्र। विचार की अतिम परिणति आचार ही है। आचार न हो तो विचार कितने ही ऊचे क्यो न हो, उनसे काम नही चल सकता। विचार तभी सार्थक होता है जब वह आचार बनता है। इस दृष्टि से विचार की शुद्धि परम आवश्यक है।

धर्म मे कोई सम्प्रदाय नही होता। वह विशुद्ध चेतना है। पर जब धर्म विचार से कटकर केवल परम्परा रह जाता है तो उससे सम्प्रदाय जन्मते है। धर्म को परम्परित नही किया जा सकता। परम्परित तो सम्प्रदाय होता है। धर्म को तो मनुष्य को अपनी चेतना से उगाना पडता है। परम्परा के पीछे जब विचार का तेजस्व नही रहता तो रूढि मात्र रह जाती है।

महावीर एक प्रखर चिंतक थे। उन्होने किसी भी प्रसग को अव्याकृत या नेति-नेति कहकर अस्पष्ट नही छोडा।

अनेकात दृष्टि उनके चिंतन की पृष्ठ रज्जु थी। पर यह दृष्टि उसी आदमी को उपलब्ध हो सकती है जिसके पास विचार की समृद्धि हो। केवल जैन होने मात्र से किसी व्यक्ति को अनेकात दृष्टि नही मिल सकती। यद्यपि महावीर की अनेकात दृष्टि को विस्तृत व्याख्यापित करने के लिए अनेक आचार्यो ने अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रथ लिखे है, फिर भी आज विज्ञान के प्रकाश मे वह जितनी स्पष्ट हो रही है, वह बहुत ही मूल्यवान है। महावीर और विज्ञान आपस मे कई जगह पर टकराते रहे है। आज भी यह नही कहा जा सकता कि उनमे पूरा-पूरा सामजस्य स्थापित हो गया है। बहुत सारे मुद्दो पर उनमे मतभेद कायम है। पर आइस्टीन के सापेक्षवाद के आविष्कृत होने से इस दिशा मे कई उलझने समाप्त हो गई है।

भौतिक विज्ञान की पहले मान्यता थी कि दिक्-काल अपने आप मे निरपेक्ष

है, परन्तु आइस्टीन ने अपने सापेक्षवाद के सामान्य सिद्धात मे इन्हे निरपेक्ष मानने से इनकार करते हुए कहा है कि दोनो एक-दूसरे से सापेक्ष है।

इसी तरह आज 'क्वाटम सिद्धान्त' भौतिक विज्ञान की इस मान्यता को गलत करार देता है कि पदार्थ का स्वरूप ठोस है और वह एक निश्चित समय और स्थान पर ही रहता है। आज यह माना जाने लगा है कि छोटे-छोटे कण ब्रह्माड मे फैले हुए है। ये कण पदार्थो की तरह ठोस नही है। इनके दो रूप है—कभी तो ये कणो के रूप मे दिखाई देते है और कभी तरगो के रूप मे। यह देखने वाले पर निर्भर करता है कि वह इन्हे किस रूप मे देखता है। क्योकि जब ये ठोस नही है तो इनके किसी निश्चित स्थान पर होने का मतलब नही होता। इनके सभी जगह होने की सभावना है। ये सभी जगह है और किसी जगह नही है।

रॉबर्ट ओपन हीयर के शब्दो मे—'अगर मै पूछू कि क्या इलेक्ट्रोन की स्थिति एक-सी रहती है तो उत्तर होगा—नही। और पूछू कि क्या उनकी स्थिति बदलती है, तब भी उत्तर नही मे ही होगा। अगर मै पूछू कि क्या इलेक्ट्रोन स्थिर है तो उत्तर स्वीकारात्मक नही होगा और जब मै यह पूछू कि क्या वह गतिशील है, तब भी उत्तर स्वीकारात्मक नही है।'

इस प्रकार हम देखते है कि विज्ञान के प्रकाश मे भी स्याद्वाद का सिद्धान्त एक ठोस सत्य का स्वरूप ग्रहण करता जा रहा है। यद्यपि कुछ लोगो को लगता है कि क्या स्याद्वाद से सत्य की स्थिति सदेहात्मक नही हो जाती है, पर जो लोग पदार्थविज्ञान के जानकार है, वे जानते है कि यह सदेह नही है, अपितु पदार्थ का स्वरूप ही उभयात्मक है। द्रष्टा उसे जिस रूप मे देखता है, उसी रूप मे दिखायी देने लगता है।

गति के स्वरूप के बारे मे महावीर का सिद्धान्त दीखने मे बडा अजीब लगता था। एक पदार्थ एक समय मे एक आकाश प्रदेश का भी अवगाहन कर सकता है तथा वह उतने ही समय मे अनत आकाश प्रदेशो का भी अवगाहन कर सकता है, यह दीखने मे थोडा विसगत लगता है। स्थिति मे तो आज यह सिद्धात विसगत है ही नही, पर गति मे भी विसगत नही है। कभी-कभी हम आकाश को एक छोर से दूसरे छोर तक देखने मे कई मिनट-घंटा लगा देते है। पर कभी-कभी हम उसे एक झटके से एक क्षण मे भी देख लेते है। पहले क्षण हम यहा थे और दूसरे क्षण वहा पहुच गये। गति के नियम की दृष्टि से आकाश प्रदेश के एक-एक देश-प्रदेश को देखने मे असख्य-अनन्त समय लगना चाहिए था और वह लगता भी है, पर यह भी सही है कि कभी-कभी हम अनन्त-असख्य आकाश-प्रदेशो का अवगाहन भी एक ही समय मे कर लेते है। आइंस्टीन ने भी गति के इस नियम को स्वीकार किया है। यही वह कारण है, जब हमारा शब्द एक समय

मे लोकात तक पहुच जाता है। निश्चय ही उसकी गति एक-एक प्रदेश से होकर आगे बढती है, पर पदार्थ के स्वभाव के सामने कोई भी नियम टिक नही सकता। हम अपेक्षा दृष्टि से नियम बनाते और उसे लागू करते है। पर अतत: ऐसा कोई भी नियम नही है, जिसे निरपेक्ष कहा जा सके। सचमुच इस दृष्टि से भगवान् महावीर का अनेकातवाद सत्य की सटीक व्याख्या है।

